प्रेमपूर्णिमा

लेखक—

स्व० 'प्रेमचन्द'

प्रकाशक—

हिन्दी-पुस्तक एजेंसी

ज्ञानवापी, बनारस

आठवीं बार] २००३ [मूल्य २।।।)

प्रकाशक—
श्रीबैजनाथ केडिया
हिन्दी-पुस्तक एजेन्सी
ज्ञानवापी, बनारस

शाखाएँ—
२०३ हरिसन रोड, कलकत्ता
दरीबाकलाँ, दिल्ली
बाँकीपुर, पटना

मुद्रक—
कृष्ण गोपाल केडिया
वणिक प्रेस,
साक्षी विनायक, बनारस

निवेदन

हम आज हिन्दी ससारकी सेवामें हिन्दी पुस्तक एजेन्सी के 'प्रेम-पूर्णिमा' नामक पुस्तकका आठवाँ संस्करण सप्रेम समर्पित करते हैं।

प्रेम पूर्णिमामें 'प्रेमचन्द' जीकी पन्द्रह चुनी हुई गल्पे हैं। इनका गुण दोष दिग्दर्शन प्रकाशककी वर्णन शक्तिसे परे है। हाँ, इतना निस्संकोच कहा जा सकता है कि भारतकी अत्युन्नत भाषाओं-में भी इससे अच्छी गल्पे बहुत कम हैं। बङ्गभाषाका साहित्य गल्पों और उपन्यासोंके नाते विशेष सम्पन्न गिना जाता है पर उसमें भी ऐसी अच्छी गल्पे लिखनेवाले एक दो ही हैं। यह हमारी कपोल कल्पना नही, बङ्गभाषाके वर्त्तमान उपन्यास सम्राट प्रसिद्ध गल्प लेखक श्रीशरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय महाशयकी सच्ची राय है। हिन्दीमें बङ्गभाषासे अनुवाद होकर जो दो-चार गल्प सग्रह निकले हैं उन्हे मुकाबलेमें रखकर पाठक इस कथनकी सचाईकी परीक्षा कर सकते हैं। मराठी और गुजरातीमें तो बड़ी शीघ्रतासे 'प्रेमचन्द' जीकी सब गल्पोंका अनुवाद हो रहा है।

हिन्दी ससारको 'प्रेमचन्दजी' पर गर्व होना चाहिये जिनकी लेखनीके प्रतापसे गल्प और उपन्यासोंमें हिन्दी अपनी दूसरी बहनोंके बराबर बनती जा रही है।

जिन लोगोंमें गल्पोंके गुणदोष जाँचनेकी शक्ति है, उनसे हमारा विनीत निवेदन है कि वे इस पुस्तककी उचित समालोचना करनेकी कृपा अवश्य करे।

—प्रकाशक

सूची

प्रेम पूर्णिमा

ईश्वरीय न्याय—

[१]

कानपुरके जिलेमें पण्डित भृगुदत्त नामक एक बड़े जमींदार थे। मुन्शी सत्यनारायण उनके कारिन्दा थे। वह बड़े स्वामिभक्त और सच्चरित्र मनुष्य थे। लाखो रुपयेकी तहसील और हजारों मन अनाजका लेन-देन उनके हाथमें था, पर कभी उनकी नीयत डाँवाडोल न होती। उनके सुप्रबन्धसे रियासत दिनों-दिन उन्नति करती जाती थी। ऐसे कर्मपरायण सेवकका जितना सम्मान होना चाहिए, उससे कुछ अधिक ही होता था। दुःख सुखके प्रत्येक अवसरपर पण्डितजी उनके साथ बड़ी उदारतासे पेश आते। धीरे धीरे मु शीजीका विश्वास इतना बढा कि पण्डित-जीने हिसाब-किताबका समझना भी छोड़ दिया। सम्भव है, उनमें आजीवन इसी तरह निभ जाती, पर भावी प्रबल है। प्रयागमें कुम्भ लगा तो पंडितजी भी स्नान करने गये। वहाँसे लौटकर फिर वे घर न आये। मालूम नहीं, किसी गढ़ेमें फिसल पड़े या कोई जल-जन्तु उन्हें खींच ले गया, उनका फिर कुछ पता ही न चला। अब मुन्शी सत्यनारायणके अधिकार और भी बढ़े। एक हतभागिनी विधवा और दो छोटे-छोटे बालकोंके

सिवा पण्डितजीके घरमें और कोई न था। अन्त्येष्टि क्रियासे निवृत्त होकर एक दिन शोकातुर पण्डिताइनने उन्हें बुलाया और रोकर कहा—लाला! पण्डितजी तो हमें मँझधारमें छोड़कर सुरपुरको सिधार गये, अब यह नैया तुम्ही पार लगाओ तो लग सकती है। यह सब खेती तुम्हारी ही लगायी हुई है। इससे तुम्हारे ही ऊपर छोड़ती हूँ। ये तुम्हारे बच्चे हैं, इन्हे अपनाओ। जबतक मालिक जिये, तुम्हें अपना भाई समझते रहे। मुझे विश्वास है कि तुम उसी तरह इस भारको सँभाले रहोगे।

सत्यनारायणने रोते हुए जवाब दिया—भाभी! भैया क्या उठ गये, मेरे भाग्य फूट गये। नही तो मुझे आदमी बना देते। मै उन्हीका नमक खाकर जिया हूँ और उन्हीकी चाकरीमें मरूँगा, आप धीरज रखें। किसी प्रकारकी चिन्ता न करें। मै जीतेजी आपकी सेवासे मुँह न मोड़ूँगा। आप केवल इतना कीजियेगा कि मैं जिस किसीकी शिकायत करूँ उसे डाँट दीजियेगा, नहीं तो ये लोग सिर चढ जायँगे।

[२]

इस घटनाके बाद कई वर्षोंतक मुन्शीजीने रियासतको सँभाला। वह अपने काममें बड़े कुशल थे। कभी एक कौड़ीका बल नहीं पड़ा। सारे जिलेमें उनका सम्मान होने लगा। लोग पण्डितजीको भूल-सा गये। दरबारों और कमेटियोंमें वे सम्मिलित होते, जिलेके अधिकारी उन्हींको जमींदार समझते। अन्य रईसोंमें भी उनका बड़ा आदर था, पर मानवृद्धि महँगी वस्तु है और भानुकुँवरि, अन्य स्त्रियोंके सदृश, पैसेको खूब पकड़ती थी। वह

मनुष्यकी मनोवृत्तियोंसे परिचित न थी। पण्डितजी हमेशा लालाजीको इनाम इकरार देते रहते थे। वे जानते थे कि ज्ञानके बाद ईमानका दूसरा स्तम्भ अपनी सुदशा है। इसके सिवाय वे खुद कभी कभी कागजोंकी जाँच कर लिया करते थे। नाममात्र हीको सही, पर इस निगरानीका डर जरूर बना रहता था। क्योंकि ईमानका सबसे बडा शत्रु अवसर है। भानुकुँवरि इन बातोको जानती न थी। अतएव अवसर तथा धनाभाव जैसे प्रबल शत्रुओके पजेमे पडकर मुन्शीजीका ईमान कैसे बेदाग बचता!

कानपुर शहरसे मिला हुआ, ठीक गगाके किनारे एक बहुत आबाद और उपजाऊ गाँव था। पण्डितजी इस गाँवको लेकर नदीके किनारे पक्का घाट, मन्दिर, बाग, मकान आदि बनवाना चाहते थे। पर उनकी यह कामना सफल न हो सकी। संयोगसे अब वह गाँव बिकने लगा। उसके जमीदार एक ठाकुर साहब थे। किसी फौजदारीके मामलेमे फँसे हुए थे। मुकदमा लड़नेके लिये रुपयेकी चाह थी। मुन्शीजीने कचहरीमें यह समाचार सुना। चटपट मोलतोल हुआ। दोनों तरफ गरज थी। सौदा पटनेमें देर न लगी। बैनामा लिखा गया। रजिस्टरी हुई। रुपये मौजूद न थे, पर शहरमें साख थी। एक महाजनके यहाँसे ३० हजार रुपये मँगवाये और ठाकुर साहबकी नजर किये गये। हाँ, कामकाज की आसानीके ख्यालसे यह सब लिखा-पढ़ी मुंशीजीने अपने ही नाम की, क्योंकि मालिकके लड़के अभी नाबालिग थे। उनके नामसे लेनेसे बहुत झंझट होती और विलम्ब होनेसे शिकार हाथसे निकल जाता। मुन्शीजी बैनामा लिये असीम आनन्दमें

मग्न भानुकुँवरिके पास आये। परदा कराया और यह शुभ समाचार सुनाया। भानुकुँवरिने सजल नेत्रोंसे उनको धन्यवाद दिया। पण्डितजीके नामपर मन्दिर और घाट बनवानेका इरादा पक्का हो गया।

मुन्शीजी दूसरे ही दिन उस गाँवमे गये। आसामी नजराने लेकर नये स्वामीके स्वागतको हाजिर हुए। शहरके रईसोंकी दावत हुई। लोगोंने नावोंपर बैठकर गंगाकी खूब सैर की। मदिर आदि बनवानेके लिये आबादीसे हटकर एक रमणीक स्थान चुना गया।

[३]

यद्यपि इस गाँवको अपने नामसे लेते समय मुन्शीजीके मनमे कपटका भाव न था। तथापि दो चार दिनमें ही उसका अंकुर जम गया और धीरे-धीरे बढ़ने लगा। मुन्शीजी इस गाँवकी आय व्ययका हिसाब अलग रखते और अपनी स्वामिनीको उसका ब्यौरा समझानेकी जरूरत न समझते। भानुकुँवरि भी इन बातोंमें दखल देना उचित न समझती थी, पर दूसरे कारिन्दोंसे ये सब बातें सुन-सुनकर उसे शंका होती थी कि कही मुन्शीजी दगा तो न देंगे। वह अपने मनका यह भाव मुन्शीजीसे छिपाती थी, इस ख्यालसे कि कही कारिन्दोंने उन्हें हानि पहुँचानेके लिये यह षड्यन्त्र न रचा हो।

इस तरह कई साल गुजर गये। अब उस कपटके अंकुरने वृक्षका रूप धारण किया। भानुकुँवरिको मुन्शीजीके उस भावके लक्षण दिखायी देने लगे। इधर मुन्शीजीके मनमें भी कानूनने

नीतिपर विजय पायी, उन्होंने अपने मनमें फैसला किया कि गाँव मेरा है। हाँ, मै भानुकुँवरिका ३० हजारका ऋणी अवश्य हूँ। वे बहुत करेंगी अपने रुपये ले लेगी और क्या कर सकती हैं? मगर दोनों तरफ यह आग अन्दर-ही-अन्दर सुलगती रही। मुन्शीजी शस्त्रसजित होकर आक्रमणके इन्तजारमें थे और भानु-कुँवरि इसके लिये अच्छा अवसर ढूँढ़ रही थी। एक दिन साहस करके उसने मुन्शीजीको अन्दर बुलाया और कहा—लालाजी 'बरगदा' में मन्दिरका काम कब लगवाइयेगा? उसे लिये आठ साल हो गये, अब काम लग जाय तो अच्छा हो। जिन्दगीका कौन ठिकाना, जो काम करना है उसे कर ही डालना चाहिये।

इस ढङ्गसे इस विषयको उठाकर भानुकुँवरिने अपनी चतु-राईका अच्छा परिचय दिया। मुन्शीजी भी दिलमें इसके कायल हो गये। जरा सोचकर बोले—इरादा तो मेरा कई बार हुआ, पर मौकेकी जमीन नहीं मिलती। गगातटकी सब जमीन असामियोंके जोतमें है और वह किसी तरह छोडनेपर राजी नहीं।

भानुकुँवरि—यह बात तो आज मुझे मालूम हुई। आठ साल हुए इस गाँवके विषयमें आपने कभी भूलकर भी तो चर्चा नहीं की। मालूम नही, कितनी तहसील है, क्या मुनाफा है, कैसा गाँव है, कुछ सीर होती है या नही। जो कुछ करते हैं आप ही करते हैं और करेगे। पर मुझे भी तो मालूम होना चाहिये।

मुन्शीजी सँभल बैठे। उन्हें मालूम हो गया कि इस चतुर स्त्रीसे बाजी ले जाना मुश्किल है। गाँव लेना ही है तो अब क्या डर! खुलकर बोले—आपको इससे सरोकार न था। इसलिए मैंने व्यर्थ कष्ट देना मुनासिब न समझा।

भानुकुँवरिके हृदयमे कुठार-सा लगा। परदेसे निकल आयी और मुन्शीजीकी तरफ तेज आँखोंसे देखकर बोली—आप क्या कहते हैं? आपने गाँव मेरे लिये लिया था या अपने लिये? रुपये मैंने दिये या आपने? उसपर जो खर्च पड़ा वह मेरा या आपका? मेरी समझमें नही आता कि आप कैसी बातें करते हैं?

मुन्शीजीने सावधानीसे जवाब दिया—यह तो आप जानती ही हैं कि गाँव मेरे नामसे बय हुआ है। रुपया जरूर आपका लगा, पर उनका मै देनदार हूँ। रहा तहसील-वसूलका खर्च यह सब मैंने हमेशा अपने पाससे किया है। उसका हिसाब किताब, आय व्यय, सब अलग रखता आया हूँ।

भानुकुँवरिने क्रोधसे काँपते हुए कहा—इस कपटका फल आपको अवश्य मिलेगा। आप इस निर्दयतासे मेरे बच्चोंका गला नही काट सकते। मुझे नही मालूम था कि आपने हृदयमें यह छुरी छिपा रखी है, नहीं तो यह नौबत ही क्यों आती! खैर, अबसे मेरी रोकड और बही खाता आप कुछ न छुएँ। मेरा जो कुछ होगा ले लूँगी। जाइये, एकान्तमे बैठकर सोचिये। पापसे किसीका भला नही होता। तुम समझते होगे कि ये बालक अनाथ हैं, इनकी सम्पत्ति हजम कर लूँगा। इस भूलमे न रहना। मै तुम्हारे घरकी ईंट तक बिकवा लूँगी!

यह कहकर भानुकुँवरि फिर परदेकी आड़मे आ बैठी और रोने लगी। स्त्रियाँ क्रोधके बाद किसी न-किसी बहाने रोया करती हैं। लाला साहबको कोई जवाब न सूझा। वहाँसे उठ आये और दफ्तरमें जाकर कुछ कागज उलट-पुलट करने लगे। पर भानु-कुँवरि भी उनके पीछे-पीछे दफ्तरमे पहुँची और डाँटकर बोली—

मेरा कोई कागज मत छूना, नही तो बुरा होगा ; तुम विषैले साँप हो ! मै तुम्हारा मुँह नही देखना चाहती।

मुन्शीजी कागजमें कुछ काट छाँट करना चाहते थे ; पर विवश हो गये। खजानेकी कुञ्जी निकालकर फेंक दी, बही खाते पटक दिये, किवाड़ धड़ाकेसे बन्द किये और हवाकी तरह सन्नसे निकल गये। कपटमे हाथ तो डाला, पर कपट-मन्त्र न जाना।

दूसरे कारिन्दोंने यह कैफियत सुनी तो फूले न समाये। मुन्शी-जीके सामने उनकी दाल न गलते पाती थी। भानुकुँवरिके पास आकर वे आगपर तेल छिड़कने लगे। सब लोग इस विषयमें सहमत थे कि मुन्शी सत्यनारायणने विश्वासघात किया है। मालिक का नमक उनकी हड्डियोंसे फूट फूटकर निकलेगा।

दोनों ओरसे मुकद्दमेबाजीकी तैयारियाँ होने लगीं। एक तरफ न्यायका शरीर था, दूसरी ओर न्यायकी आत्मा। प्रकृतिको पुरुषसे लड़नेका साहस हुआ था।

भानुकुँवरिने लाला छक्कनलालसे पूछा--हमारा वकील कौन है ?

छक्कनलालने इधर-उधर झाँककर कहाँ—वकील तो सेठजी हैं ; पर सत्यनारायणने उन्हे पहलेसे ही गाँठ रखा होगा। इस मुकद्दमेके लिए बड़े होशियार वकीलकी जरूरत है। मेहरा बाबू-की आजकल खूब चल रही है। हाकिमोंकी कलम पकड़ लेते हैं। बोलते हैं तो जैसे मोटरकार छूट गयी। सरकार, और क्या कहे कई आदमियोंको फाँसीसे उतार लिया है। उनके सामने कोई वकील जबान तो खोल ही नही सकता। सरकार कहें तो वही कर लिये जायँ।

छक्कनलालकी अत्युक्तिने सन्देह पैदा कर दिया। भानुकुँवरिने कहा—नही, पहले सेठजीसे पूछ लिया जाय। इसके बाद देखा जायगा। आप जाइये, उन्हें बुला लाइये।

छक्कनलाल अपनी तकदीरको ठोकते हुए सेठजीके पास गये। सेठजी पण्डित भृगुदत्तके जीवन-काल हीसे उनके कानून-सम्बन्धी सब काम किया करते थे, मुकद्दमेका हाल सुना तो सन्नाटेमें आ गये। सत्यनारायणको वह बडा नेकनीयत आदमी समझते थे। उनके पतनपर बड़ा खेद किया। उसी वक्त आये। भानुकुँवरिने रो-रोकर उनसे अपनी विपत्तिकी कथा कही और अपने दोनों लड़कोंको उनके सामने खडा करके बोली—आप इन अनाथोंकी रक्षा कीजिये। इन्हें मै आपको सौंपती हूँ।

सेठजीने समझौतेकी बात छेड़ी। बोले—आपसकी लड़ाई अच्छी नही।

भानुकुँवरि—अन्यायीके साथ लड़ना अच्छा है

सेठजी—पर हमारा पक्ष तो निर्बल है।

भानुकुँवरि फिर परदेसे निकल आयी और विस्मित होकर बोली—क्या हमारा पक्ष निर्बल है? दुनिया जानती है कि गॉव हमारा है। उसे हमसे कौन ले सकता है? नहीं, मै सुलह कभी न करूँगी। आप कागजोंको देखे। मेरे बच्चोंकी खातिर यह कष्ट उठावे। आपका परिश्रम निष्फल न जायगा। सत्यनारायणकी नीयत पहले खराब न थी। देखिये, जिस मितीमे गॉव लिया गया है उस मितीमे ३० हजारका क्या खर्च दिखाया गया है! अगर उसने अपने नाम उधार लिखा हो तो देखिये, वार्षिक सूद चुकाया गया या नहीं। ऐसे नर-पिशाचसे मै कभी सुलह न करूँगी।

सेठजीने समझ लिया कि इस समय समझाने बुझानेसे कुछ काम न चलेगा। कागजात देखे, अभियोग चलानेकी तैयारियाँ होने लगी।

[४]

मुन्शी सत्यनारायणलाल खिसियाये हुए मकान पहुँचे। लड़केने मिठाई माँगी। उसे पीटा। स्त्रीपर इसलिये बरस पड़े कि उसने क्यों लड़केको उनके पास जाने दिया। अपनी वृद्धा माताको डाँटकर कहा—तुमसे इतना भी नहीं हो सकता कि जरा लड़केको बहलाओ। एक तो मैं दिनभरका थका मादा घर आऊँ और फिर लड़केको खेलाऊँ ? मुझे दुनियामें न और कोई काम है न धन्धा।

इस तरह घरमें बावैला मचाकर वह बाहर आये और सोचने लगे—मुझसे बड़ी भूल हुई ! मैं कैसा मूर्ख हूँ ! इतने दिनतक सारे कागज-पत्र अपने हाथमें थे। जो चाहता कर सकता था। पर हाथपर हाथ धरे बैठा रहा। आज सिरपर आ पड़ी तो सूझी। मैं चाहता तो बहीखाते सब नये बना सकता था, जिसमें इस गाँव का और इस रुपयेका जिक्र ही न होता। पर मेरी मूर्खताके कारण घरमें आई हुई लक्ष्मी रूठी जाती है। मुझे क्या मालूम था कि वह चुड़ैल मुझसे इस तरह पेश आवेगी और कागजोंमें हाथतक न लगाने देगी।

इसी उधेड़-बुनमें मुन्शीजी यकायक उछल पड़े। एक उपाय सूझ गया—क्यों न कार्यकर्त्ताओंको मिला लूँ ? यद्यपि मेरी सख्तीके कारण वे सब मुझसे नाराज थे और इस समय सीधे

बात न करेंगे, तथापि उनमे ऐसा कोई भी नही जो प्रलोभनसे मुट्ठीमे न आ जाय। हाँ, इसमे रुपया पानीकी तरह बहाना पड़ेगा। पर इतना रुपया आवे कहाँसे? हाय दुर्भाग्य! दो-चार दिन ही पहले चेत गया होता तो कोई कठिनाई न पडती। क्या जानता था कि वह डाइन इस तरह वज्रप्रहार करेगी। बस, अब एक ही उपाय है। किसी तरह वे कागजात गुम कर दूँ। बड़ी जोखिमका काम है पर करना ही पडेगा।

दुष्कामनाओंके सामने एक बार सिर झुकानेपर फिर सँभलना कठिन हो जाता है। पापके अथाह दलदल में जहाँ एक बार पड़े कि फिर प्रति-क्षण नीचे ही चले जाते हैं। मुन्शी सत्यनारायण सा विचारशील मनुष्य इस समय इस फिक्रमें था कि कैसे सेंद लगा पाऊँ! मुन्शीजीने सोचा—क्या सेंद लगाना आसान है! इसके वास्ते कितनी चतुरता कितना साहस, कितनी बुद्धि, कितनी वीरता चाहिए। कौन कहता है कि चोरी करना आसान काम है? मै जो कही पकडा गया तो डूब मरनेके सिवा और कोई मार्ग ही न रहेगा।

बहुत सोचने विचारनेपर भी मुन्शीजीको अपने ऊपर ऐसा दुस्साहस कर सकनेका विश्वास न हो सका। हाँ, इससे सुगम एक दूसरी तदबीर नजर आयी—क्यों न दफ्तरमे आग लगा दूँ? एक बोतल मिट्टीके तेल और एक दियासलाईकी जरूरत है। किसी बदमाशको मिला लूँ। मगर यह क्या मालूम कि वह बही कमरेमे रखी है या नही! चुडैलने उसे जरूर अपने पास रख ली होगी। नही, आग लगाना गुनाह बे-लज्जत होगा।

बहुत देरतक मुन्शीजी करवटे बदलते रहे। नये नये मनसूबे सोचते, पर फिर अपने ही तर्कोंसे उन्हें काट देते। जैसे वर्षाकाल

मे बादलोंकी नयी नयी सूरते बनती और फिर हवाके वेगसे बिगड़ जाती हैं वही दशा उस समय उनके मनसूबोंकी हो रही थी।

पर इस मानसिक अशान्तिमें भी एक विचार पूर्णरूपसे स्थिर था--किसी तरह इन कागजातको अपने हाथमें लाना चाहिए। काम कठिन है--माना; पर हिम्मत न थी तो रार क्यो मोल ली? क्या ३० हजारकी जायदाद दाल भातका कौर है!--चाहे जिस तरह हो, चोर बने बिना काम नही चल सकता। आखिर जो लोग चोरियाँ करते हैं वे भी तो मनुष्य ही होते है। बस एक छलाँगका काम है। अगर पार हो गये तो राज करेंगे, गिर पड़े तो जानसे हाथ धोयेंगे।

[५]

'रातके दस बज गये थे। मुन्शी सत्यनारायण कुञ्जियोंका एक गुच्छा कमरमें दबाये घरसे बाहर निकले। द्वारपर थोडा सा पुआल रखा हुआ था। उसे देखते ही वे चौक पड़े। मारे डरके छाती धड़कने लगी। जान पडा कि कोई छिपा बैठा है। कदम रुक गये। पुआलकी तरफ ध्यानसे देखा। उसमें बिलकुल हरकत न हुई। तब हिम्मत बाँधी। आगे बढे और मनको समझाने लगा--मै कैसा बौखल हूँ। अपने द्वार पर किसका डर? और सड़क पर भी मुझे किसका डर है। मैं अपनी राह जाता हूँ। कोई मेरी तरफ तिरछी आँखसे नहीं देख सकता। हाँ जब मुझे सेंद लगाते देख ले--वहीं पकड़ ले--तब अलबत्ते डरनेकी बात है! तिसपर भी बचावकी युक्ति निकल सकती है।'

अकस्मात् उन्होंने भानुकुँवरिके एक चपरासीको आते हुए

देखा। कलेजा धड़क उठा। लपककर एक अन्धेरी गलीमे घुस गये। बड़ी देरतक वहाँ खडे रहे। जब वह सिपाही आँखोंसे ओझल हो गया तब फिर सडकपर आये। वह सिपाही आज सुबहतक इनका गुलाम था, उसे इन्होंने कितनी बार गालियाँ दी थी; लाते भी मारी थी। पर अभी उसे देखकर उनके प्राण सूख गये।

उन्होंने फिर तर्ककी शरण ली। मै मानो भंग खाकर आया हूँ। इस चपरासीसे इतना डरा, माना कि वह मुझे देख लेता, पर मेरा कर क्या सकता था। हजारों आदमी रास्ता चल रहे हैं। उन्हीमे एक मै भी हूँ। क्या वह अन्तर्यामी है ? सबके हृदय का हाल जानता है ? मुझे देखकर वह अदबसे सलाम करता और वहाँका कुछ हाल भी कहता, पर मैं उससे ऐसा डरा कि सूरत तक न दिखायी। इस तरह मनको समझाकर वे आगे बढ़े। सच है; पापके पंजोंमें फँसा हुआ मन पतझड़का पत्ता है, जो हवाके जरासे झोंकेसे गिर पड़ता है।

मुन्शीजी बाजार पहुँचे। अधिकतर दूकानें बन्द हो चुकी थीं। उनमें साँड़ और गाये बैठी हुई जुगाली कर रही थी। केवल हलवाइयोंकी दूकानें खुली थी और कहीं-कहीं गजरेवाले हारकी हाँक लगाते फिरते थे। सब हलवाई मुन्शीजीको पहचानते थे। अतएव, मुन्शीजीने सिर झुका लिया। कुछ चाल बदली और लपकते हुए चले। यकायक उन्हें एक बग्घी आती दिखायी दी। यह सेठ बल्लभदास वकीलकी बग्घी थी। इसमें बैठकर हजारों बार सेठजीके साथ कचहरी गये थे, पर आज यह बग्घी काल-देवके समान भयकर मालूम हुई। फौरन एक खाली दुकानपर

चढ गये। वहाँ विश्राम करनेवाले साँढने समझा ये मुझे पदच्युत करने आये हैं। माथा झुकाये, फुँकारता हुआ उठ बैठा, पर इसी बीचमें बग्घी निकल गयी और मुन्शीजीकी जान-मे-जान आयी। अबकी उन्होंने तर्कका आश्रय न लिया। समझ गये कि इस समय इससे कोई लाभ नहीं। खैरियत यह हुई कि वकीलने देखा नहीं। वह एक ही घाघ है। मेरे चेहरेसे ताड़ जाता।

कुछ विद्वानोंका कथन है कि मनुष्यकी स्वाभाविक प्रवृत्ति पापकी ओर होती है, पर यह कोरा अनुमान ही अनुमान है, बात अनुभव सिद्ध नहीं। सच बात यह है कि मनुष्य स्वभावतः पाप-भीरु होता है और हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं कि पापसे उसे कैसी घृणा होती है।

एक फरलाँग आगे चलकर मुन्शीजीको एक गली मिली। यही भानुकुँवरिके घरका रास्ता था। एक धुँधली-सी लालटेन जल रही थी। जैसा मुन्शीजीने अनुमान किया था, पहरेदारका पता न था। अस्तबलमें चमारोके यहाँ नाच हो रहा था। कई चमारिने बनाव-सिंगार करके नाच रही थी। चमार मृदङ्ग बजा बजाकर गाते थे—

‘नाही घरे श्याम, घेरी आये बदरा
सोवत रहेउँ सपन एक देखेउँ रामा
खुलि गई नींद ढरक गये कजरा
नाहीं घरे श्याम, घेरी आये बदरा

दोनों पहरेदार वहीं तमाशा देख रहे थे। मुन्शीजी दबे पाँव

लालटेनके पास गये और जिस तरह बिल्ली चूहेपर झपटती है उसी तरह उन्होंने झपटकर लालटेनको बुझा दिया। एक पड़ाव पूरा हो गया; पर वे उस कार्यको जितना दुष्कर समझते थे उतना न जान पड़ा। हृदय कुछ मजबूत हुआ। दफ्तरके बरामदेमें पहुँचे और खूब कान लगाकर आहट ली। चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ था। केवल चमारोंका कोलाहल सुनाई देता था। इस समय मुन्शीजीके दिलमें धड़का न था, पर सिर धम-धम कर रहा था, हाथ पाँव काँप रहे थे, साँस बड़े वेगसे चल रही थी, शरीरका एक-एक रोम आँख और कान बना हुआ था। वे सजीवताकी मूर्त्ति हो रहे थे। उनमें जितना पौरुष, जितनी चपलता, जितना साहस, जितनी चेतनता, जितनी बुद्धि; जितना औसान था, वे सब इस वक्त सजग और सचेत होकर इच्छा शक्तिकी सहायता कर रहे थे।

दफ्तरके दरवाजेपर वही पुराना ताला लगा हुआ था। इसकी कुञ्जी आज बहुत तलाश करके वे बाजारसे लाये थे। ताला खुल गया, किवाड़ोंने बहुत दबी जबानसे प्रतिरोध किया, पर इसपर किसीने ध्यान न दिया। मुन्शीजी दफ्तरमें दाखिल हुए। भीतर चिराग जल रहा था। मुन्शीजीको देखकर उसने एक दफे सिर हिलाया। मानों उन्हें भीतर आनेसे रोका।

मुन्शीजीके पैर थर थर काँप रहे थे। एड़ियाँ जमीनसे उछली पड़ती थीं। पापका बोझ उन्हें असह्य था।

पलभरमें मुन्शीजीने बहियोंको उलटा पलटा, लिखावट उनकी आँखोंमें तैर रही थी। इतना अवकाश कहाँ था कि जरूरी कागजात छाँट लेते। उन्होंने सारी बहियोंको समेटकर एक बड़ा

गट्ठर बनाया और सिरपर रखकर तीरके समान कमरेसे बाहर निकल आये। उस पापकी गठरीको लादे हुए वह अन्धेरी गलीमें गायब हो गये।

तग, अन्धेरी, दुर्गन्धिपूर्ण, कीचडसे भरी हुई गलियोंमें वे नंगे पॉव, स्वार्थ, लोभ और कपटका वह बोझ लिये चले जाते थे। मानो पापमय आत्मा नरककी नालियोंमें बही जाती थी।

बहुत दूरतक भटकनेके बाद वे गङ्गाके किनारे पहुॅचे। जिस तरह कलुषित हृदयोंमे कही-कहीं धर्मका धुँधला प्रकाश रहता है उसी तरह नदीकी सतहपर तारे झिलमिला रहे थे। तटपर कई साधु धूनी रमाये पड़े थे। ज्ञानकी ज्वाला मनकी जगह बाहर दहक रही थी। मुन्शीजीने अपना गट्ठर उतारा और चादर-खूब मजबूत बॉधकर बलपूर्वक नदीमें क दिया। सोती हुई लहरोंमे कुछ हलचल हुई और फिर सन्नाटा हो गया।

[६]

मुन्शी सत्यनारायणके घरमें दो स्त्रियॉ थीं—माता और पत्नी। वे दोनो अशिक्षिता थीं। तिसपर मी मुन्शीजीको गङ्गामें डूब मरने या कहीं जानेकी जरूरत न होती थी। न वे बॉड़ी पहनती थीं, न मोजे जूते, न हारमोनियमपर गा सकती थी। यहाँतक कि उन्हें साबुन लगाना भी न आता था। हेयर पिन, ब्रुचेज और जाकेट आदि परमावश्यक चीजोंका तो उन्होंने नाम भी नहीं सुना था। बहूमें आत्म-सम्मान जरा भी नहीं था, न सासमें आत्म गौरवका जोश। बहू अबतक सासकी घुड़कियाँ भीगी बिल्लीकी तरह सह लेती थी—हा मूर्खे! सासको बच्चेके नहलाने-धुलाने,

यहाँतक कि घरमें झाड़ू देनेसे भी घृणा न थी, हा ज्ञानान्धे! बहू स्त्री क्या थी, मिट्टीका लोंदा थी। एक पैसेकी भी जरूरत होती तो साससे माँगती। साराश यह कि दोनों जनी अपने अधिकारोंसे बेखबर, अन्धकारमें पड़ी हुई पशुवत् जीवन व्यतीत करती थी। ऐसी फूहड थी कि रोटियाँ भी अपने हाथसे बना लेती थी। कजूसीके मारे दालमोट, समोसे कभी बाजारसे न मँगाती। आगरेवालेकी दूकानकी चीजें खाई होती तो उनका मजा जानती। बुढ़िया खूसट दवा दरपन भी जानती थी बैठी-बैठी घासपात फूटा करती।

मुन्शीजीने माके पास जाकर कहा—अम्मा! अब क्या होगा? भानुकुँवरिने मुझे जवाब दे दिया।

माताने घबराकर पूछा—जवाब दे दिया?

मुन्शीजी—हाँ, बिल्कुल बेकसूर!

माता—क्या बात हुई! भानुकुँवरिका मिजाज तो ऐसा नथा।

मुन्शीजी—बात कुछ न थी। मैंने अपने नामसे जो गाँव लिया था उसे मैंने अपने अधिकारमें कर लिया। कल मुझसे और उनसे साफ-साफ बातें हुईं, मैंने कह दिया कि यह गाँव मेरा है। मैंने अपने नामसे लिया है। उसमें तुम्हारा कोई इजारा नही। बस, बिगड गईं, जो मुँहमें आया बकती रही। उसी वक्त मुझे निकाल दिया और धमका कर कहा, मैं तुमसे लड़कर अपना गाँव ले लूँगी। अब आज ही उनकी तरफसे मेरे ऊपर मुकद्दमा दायर होगा। मगर इससे होता क्या है। गाँव मेरा है। उसपर मेरा कब्जा है। एक नही हजार मुकद्दमे चलावें डिगरी मेरी होगी—

माताने बहूकी तरफ मर्मान्तक दृष्टिसे देखा और बोली—

क्यों भैया! वह गॉव लिया तो था तुमने उन्हींके रुपयेसे और उन्हीके वास्ते?

मुन्शीजी—लिया था तब लिया था। अब मुझसे ऐसा आबाद और मालदार गॉव नही छोड़ा जाता। वह मेरा कुछ नही कर सकती। मुझसे अपना रुपया भी नही ले सकती। डेढ़ सौ गॉव तो हैं। तब भी हवस नही मानती।

माता—बेटा, किसीके धन ज्यादा होता है तो वह फेंक थोड़े ही देता है। तुमने अपनी नीयत बिगाड़ी, यह अच्छा काम नही किया। दुनिया तुम्हें क्या कहेगी। और दुनिया चाहे कहे या न कहे, तुमको भला ऐसा चाहिये कि जिसकी गोदमें इतने दिन पले, जिसका इतने दिनोंतक नमक खाया, अब उसीसे दगा करो! नारायणने तुम्हें क्या नहीं दिया? मजेसे खाते हो, पहनते हो, घरमे नारायणका दिया चार पैसा है, बाल बच्चे हैं। और क्या चाहिये? मेरा कहना मानो, इस कलकका टीका अपने माथे न लगाओ। यह अजस मत लो। बरकत अपनी कमाईमे होती है, हरामकी कौड़ी कभी नहीं फलती।

मुन्शीजी—ऊँह! ऐसी बातें बहुत सुन चुका हूँ। दुनिया उन पर चलने लगे तो सारे काम बन्द हो जायँ! मैने इतने दिनोंतक इनकी सेवा की। मेरी ही बदौलत ऐसे ऐसे चार पॉच गॉव बढ़ गये। जबतक पण्डितजी थे, मेरी नीयतका मान था। मुझे आँखमें धूल झोंकनेकी जरूरत न थी, वे आप ही मेरी खातिर कर दिया करते थे। उन्हें मरे आठ साल हो गये मगर मुसम्मातके एक बीड़े पानकी भी कसम खाता हूँ, मेरी जातसे उनकी हजारों रुपये मासिककी बचत होती थी। क्या उनको इतनी समझ भी न थी कि

यह बेचारा जो इतना ईमानदारीसे मेरा काम करता है, इस नफे में कुछ उसे भी मिलना चाहिए ? हक कहकर न दो, इनाम कहकर दो, किसी तरह तो दो। मगर वे तो समझती थीं कि मैंने इसे बीस रुपये महीनेपर मोल ले लिया है। मैंने आठ सालतक सब्र किया, अब क्या इसी बीस रुपयेमें गुलामी करता रहूँ और अपने बच्चोंको दूसरोंका मुँह ताकनेके लिये छोड़ जाऊँ ? अब मुझे यह अवसर मिला है। इसे क्यों छोड़ूँ ? जमींदारीकी लालसा लिए हुए क्यों मरूँ ? जबतक जीऊँगा खुद खाऊँगा, मेरे पीछे मेरे बच्चे चैन उड़ायेंगे।

माताकी आँखोंमे आँसू भर आये। बोली—बेटा, मैंने तुम्हारे मुँहसे ऐसी बातें कभी न सुनी थी। तुम्हारे क्या हो गया है ? तुम्हारे आगे बाल बच्चे हैं। आगमें हाथ न डालो ?

बहूने सासकी ओर देखकर कहा—हमको ऐसा धन न चाहिए, हम अपनी दाल-रोटी हीमें मगन हैं।

मुन्शीजी—अच्छी बात है, तुम लोग रोटी दाल खाना, गजी गाढ़ा पहनना, मुझे अब हलुवे पूरीकी इच्छा है।

माता—यह अधर्म मुझसे न देखा जायगा। मैं गङ्गामें डूब मरूँगी।

पत्नी—तुम्हें ये सब काटे बोना है तो मुझे मायके पहुँचा दो। मैं अपने बच्चोंको लेकर इस घरमें न रहूँगी।

मुन्शीजीने झुँझलाकर कहा—तुम लोगोंकी बुद्धि तो भाँग खा गयी है। लाखों सरकारी नौकर रात-दिन दूसरोंका गला दबा दबाकर रिश्वतें लेते हैं और चैन करते हैं। न उनके बाल-बच्चों ही को कुछ होता है न उन्हींको हैजा पकड़ता है। अधर्म उनको

क्यों नहीं खा जाता जो मुझीको खा जायगा ! मैंने तो सत्यवादियों को सदा दुःख झेलते ही देखा है । मैंने जो कुछ किया है उसका सुख लूटूँगा ! तुम्हारे मनमें जो आवे करो ।

प्रातःकाल दफ्तर-खुला तो क़ागज़ात सब गायब थे । मुन्शी छक्कनलाल बौखलायेसे घरमें गये और मालकिनसे पूछा—'क्या कागजात आपने उठवा लिये हैं ?' भानुकुँवरिने कहा—'मुझे क्या खबर जहाँ आपने रखे होंगे वहीं होंगे ।' फिर तो सारे घरमें खलबली पड़ गयी । पहरेदारोंपर मार पड़ने लगी । भानुकुँवरिको तुरन्त मुन्शी सत्यनारायणपर सन्देह हुआ । मगर उनकी समझमें छक्कनलालकी सहायताके बिना यह काम होना असम्भव था । पुलिसमें रपट हुई । एक ओझा नाम निकालनेके लिये बुलाया गया । मौलवी साहबने कुर्रा फेंका । ओझाने बताया, यह किसी पुराने बैरीका काम है । मौलवी साहबने फर्माया, किसीके घर भेदियेने यह हरकत की है । शामतक यही दौड़-धूप रही । फिर यह सलाह होने लगी कि इन कागजातके बगैर मुकद्दमा कैसे चलेगा । पक्ष तो पहले ही निर्बल था । जो कुछ बल था वह इसी बही खातेका था । अब तो वे सबूत भी हाथसे गये । दावेमें कुछ जान ही न रही । मगर भानुकुँवरिने कहा—'बलासे हार जायँगे । हमारी चीज कोई छीन ले तो हमारा धर्म है कि उससे यथाशक्ति लड़ें । हारकर बैठ रहना कायरोंका काम है ।' सेठजी (वकील) को इस दुर्घटनाका समाचार मिला तो उन्होंने भी यही कहा कि अब दावेमें जरा भी जान नहीं है । केवल अनुमान और तर्कका भरोसा है । अदालतने माना तो माना, नहीं तो हार माननी पड़ेगी । पर भानुकुँवरिने एक न मानी । लखनऊ और

इलाहाबादसे दो होशियार बैरिस्टर बुलवाये। मुकद्दमा शुरू हो गया।

सारे शहरमें इस मुकद्दमेकी धूम थी। कितने ही रईसोंको भानुकुँवरिने साक्षी बनाया था। मुकद्दमा शुरू होनेके समय हजारों आदमियोंकी भीड़ हो जाती थी। लोगोंके इस खिंचावका मुख्य कारण यह था कि भानुकुँवरि एक परदेकी आड़में बैठी हुई अदालतकी कार्रवाई देखा करती थी। क्योंकि उसे अब अपने नौकरोंपर जरा भी विश्वास न था।

बादीके बैरिस्टरने एक बड़ी मार्मिक वक्तृता दी। उसने सत्यनारायणकी पूर्वावस्थाका खूब अच्छा चित्र खींचा। उसने दिखलाया कि वे कैसे स्वामिभक्त, कैसे कार्य-कुशल, कैसे धर्मशील थे और स्वर्गवासी पण्डित भृगुदत्तका उनपर पूर्ण विश्वास हो जाना किस तरह स्वाभाविक था। इसके बाद उसने सिद्ध किया कि मुन्शी सत्यनारायणकी आर्थिक अवस्था कभी ऐसी न थी कि वे इतना धन संचय कर सकते। अन्तमें उसने मुन्शीजीकी स्वार्थपरता, कूटनीति, निर्दयता और विश्वासघातकताका ऐसा घृणोत्पादक चित्र खींचा कि लोग मुन्शीजीको गालियाँ देने लगे। इसके साथ ही उन्होंने पण्डितजीके अनाथ बालकोंकी दशाका बड़ा ही करुणोत्पादक वर्णन किया, कैसे शोक और लज्जाकी बात है कि ऐसा चरित्रवान, ऐसा नीतिकुशल मनुष्य इतना गिर जाय कि अपने ही स्वामीके अनाथ बालकोंकी गर्दनपर छुरी चलानेमें संकोच न करे। मानव पतनका ऐसा करुण, ऐसा हृदय-विदारक उदाहरण मिलना कठिन है। इस कुटिल कार्यके परिणाम की दृष्टिसे इस मनुष्यके पूर्व परिचित सद्गुणोंका गौरव लुप्त हो

जाता है। क्योंकि वह असली मोती नहीं, नकली काँचके दाने थे जो केवल विश्वास जमानेके निमित्त दरसाये गये थे। वह केवल एक सुन्दर जाल था जो एक सरल हृदय और छल-छन्दोंसे दूर रहनेवाले रईसको फँसानेके लिए फैलाया गया था। इस नरपशुका अन्तःकरण कितना अन्धकारमय, कितना कपट-पूर्ण, कितना कठोर है और इसकी दुष्टता कितनी घोर और कितनी अपावन है। अपने शत्रुके साथ दगा करना तो एक बार क्षम्य है मगर इस मलिनहृदय मनुष्यने उन बेकसोंके साथ दगा किया है जिनपर मानव-स्वभावके अनुसार दगा करना अनुचित है। यदि आज हमारे पास वही खाते मौजूद होते तो अदालतपर सत्यनारायणकी सत्यता स्पष्टरूपसे प्रकट हो जाती। पर मुन्शी-जीके बरखास्त होते ही दफ्तरसे उनका लुप्त हो जाना भी अदा-लतके लिए एक बड़ा सबूत है।

शहरके कई रईसोंने गवाही दी—पर सुनी सुनाई बातें जिरहमें उखड़ गयीं।

दूसरे दिन फिर मुकद्दमा पेश हुआ।

प्रतिवादीके वकीलने अपनी वक्तृता शुरू की। उसमें गम्भीर विचारोंकी अपेक्षा हास्यका आधिक्य था—यह एक विलक्षण न्याय सिद्धान्त है कि किसी धनाढ्य मनुष्यका नौकर जो कुछ खरीदे वह उसके स्वामीकी चीज समझी जाय। इस सिद्धान्तके अनुसार हमारी गवर्नमेंटको अपने कर्मचारियोंकी सारी संपत्तिपर कब्जा कर लेना चाहिये। यह स्वीकार करनेमें हमको कोई आपत्ति नहीं कि हम इतने रुपयोंका प्रबन्ध न कर सकते थे। और यह धन हमने स्वामी हीसे ऋण लिया। पर हमसे ऋण

चुकानेका कोई तकाजा न करके वह जायदाद ही माँगी जाती है। यदि हिसाबके कागजात दिखलाये जायँ तो वे साफ बता देंगे कि मैं सारा ऋण दे चुका। हमारे मित्रने कहा है कि ऐसी अवस्थामें बहियोंका गुम हो जाना अदालतके लिए एक सबूत होना चाहिये। मै भी उनकी उक्तिका समर्थन करता हूँ। यदि मै आपसे ऋण लेकर अपना विवाह करूँ तो क्या आप मुझसे मेरी नवविवाहिता वधूको छीन लेंगे ?

हमारे सुयोग्य मित्रने हमारे ऊपर अनाथोंके साथ दगा करने का दोष लगाया है। अगर मुन्शी सत्यनारायणकी नीयत खराब होती तो उनके लिये अबसे अच्छा अवसर वह था जब पण्डित भृगुदत्तका स्वर्गवास हुआ। इतने विलम्बकी क्या जरूरत थी ? यदि आप शेरको फँसाकर उसके बच्चेको उसी वक्त नहीं पकड़ लेते, उसे बढने और सबल होनेका अवसर देते हैं तो मैं आपको बुद्धिमान न कहूँगा। यथार्थ बात यह है कि मुन्शी सत्यनारायण ने नमकका जो कुछ हक था वह पूरा कर दिया। आठ वर्ष तक तन-मनसे स्वामी-संतानकी सेवा की। आज उन्हें अपनी साधुताका जो फल मिल रहा है वह बहुत ही दुःखजनक और हृदय-विदारक है। इसमें भानुकुँवरिका कोई दोष नहीं। वे एक गुण-सम्पन्न महिला हैं। मगर अपनी जातिके अवगुण उनमें भी विद्यमान हैं। ईमानदार मनुष्य स्वभावतः स्पष्टभाषी होता है, उसे अपनी बातोंमें नमक-मिर्च लगानेकी जरूरत नहीं होती। यही कारण है कि मुन्शीजीके मृदुभाषी मातहतोंको उनपर आक्षेप करनेका मौका मिल गया। इस दावेकी जड़ केवल इतनी है और कुछ नहीं। भानुकुँवरि यहाँ उपस्थित हैं। क्या वे कह

सकती हैं कि इस आठ वर्षकी मुद्दतमें कभी इस गाँवका जिक्र उनके सामने आया ? कभी उसके हानि-लाभ, आय व्यय, लेन-देनकी चर्चा उनसे की गयी ? मान लीजिये कि मैं गवर्नमेंटका मुलाजिम हूँ। यदि मै आज दफ्तरमें आकर अपनी पत्नीके आय व्यय और अपने टहलुओंके टैक्सोंका पचड़ा गाने लगूँ तो शायद मुझे शीघ्र ही अपने पदसे पृथक् होना पड़े। और संभव है, कुछ दिनों बरेलीकी विशाल अतिथिशालामें रखा जाऊँ। जिस गाँवसे भानुकुँवरिको कोई सरोकार न था उसकी चर्चा उनसे क्यों की जाती ?

इसके बाद बहुतसे गवाह पेश हुए, जिनमें अधिकाश आस-पासके देहातोंके जमीदार थे, उन्होंने बयान किया कि हमने मुन्शी सत्यनारायणको असामियोंको अपनी दस्तखती रसीदें देते और अपने नामसे खजानेमें रुपया दाखिल करते देखा है।

इतनेमें सन्ध्या हो गयी। अदालतने एक सप्ताहमें फैसला सुनानेका हुक्म दिया।

[८]

सत्यनारायणको अब अपनी जीतमें कोई सन्देह न था। वादी पक्षके गवाह भी उखड़ गये थे और बहस भी सबूतसे खाली थी। अब इनकी गिनती भी जमींदारोंमें होगी, और संभव है, वह कुछ दिनोंमें रईस कहलाने लगें। पर किसी-न-किसी कारणसे अब वह शहरके गण्यमान्य पुरुषोंसे आँखें मिलाते शरमाते थे। उन्हें देखते ही उनका सिर नीचा हो जाता था। वह मनमें डरते थे, कि वे लोग कहीं इस विषयपर कुछ-पूछताछ न

कर बैठे। वह बाजारमें निकलते तो दूकानदारोंमें कुछ काना-फूसी होने लगती और लोग उन्हें तिरछी दृष्टिसे देखने लगते। अबतक लोग उन्हें विवेकशील और सच्चरित्र मनुष्य समझते थे, शहरके धनीमानी उन्हें इज्जतकी निगाहसे देखते और उनका बड़ा आदर करते थे। यद्यपि मुन्शीजीको अबतक किसीसे टेढ़ी तिरछी सुननेका संयोग न पड़ा था, तथापि उनका मन कहता था कि सच्ची बात किसीसे छिपी नहीं है। चाहे अदालतसे उनकी जीत हो जाय, पर उनकी साख अब जाती रही। अब उन्हें लोग स्वार्थी, कपटी और दगाबाज समझेंगे! दूसरोंकी तो बात अलग रही, स्वय उनके घरवाले उनकी उपेक्षा करते थे। बूढ़ी माताने तीन दिनसे मुँहमें पानी नहीं डाला था। स्त्री बार-बार हाथ जोड़कर कहती थी कि अपने प्यारे बालकोंपर दया करो। बुरे कामका फल कभी अच्छा नहीं होता। नहीं तो पहले मुझीको विष खिला दो।

जिस दिन फैसला सुनाया जानेवाला था, प्रातःकाल एक कुँजड़िन तरकारियाँ लेकर आयी और मुन्शिआइनसे बोली—बहूजी, हमने बाजारमें एक बात सुनी है। बुरा न मानो तो कहूँ। जिसको देखो उसके मुँहमें यही बात है कि लाला बाबूने जालसाजीसे पण्डिताइनका कोई इलाका ले लिया। हमें तो इसपर यकीन नहीं आता। लाला बाबूने न सँभाला होता तो अबतक पण्डिताइनका कहीं पता न लगता। एक अंगुल जमीन न बचती। इन्हीं ऐसा सरदार था कि सबको सँभाल लिया। तो क्या अब उन्हींके साथ बदी करेंगे? अरे बहू, कोई कुछ साथ लाया है कि ले जायगा। यही नेक-बदी रह जाती है। बुरे

का फल बुरा होता है। आदमी न देखे पर अल्लाह सब कुछ देखता है।

बहूजीपर घड़ों पानी पड़ गया। जी चाहता था कि धरती फट जाती तो उसमें समा जाती। स्त्रियाँ स्वभावतः लज्जाकी मूर्ति होती हैं। उनमें आत्माभिमानकी मात्रा अधिक होती है। निन्दा और अपमान उनसे सहन नहीं हो सकता। सिर झुकाये हुए बोली—बुआ! मैं इन बातोंको क्या जानूँ? मैंने तो आज ही तुम्हारे मुँहसे सुनी है। कौन-सी तरकारियाँ हैं?

मुन्शी सत्यनारायण अपने कमरेमें लेटे हुए कुंजड़िनकी बातें सुन रहे थे। उसके चले जानेके बाद आकर स्त्रीसे पूछने लगे—यह शैतानकी खाला क्या कह रही थी?

स्त्रीने पतिकी ओरसे मुँह फेर लिया और जमीनकी ओर ताकते हुए बोली—क्या तुमने नहीं सुना। तुम्हारा गुणगान कर रही थी। तुम्हारे पीछे देखो किस किसके मुँहसे ये बातें सुननी पड़ती हैं और किस किससे मुँह छिपाना पड़ता है।

मुन्शीजी अपने कमरेमें लौट आये। स्त्रीको कुछ उत्तर नहीं दिया। आत्मा लज्जासे परास्त हो गयी। जो मनुष्य सदैव सर्व-सम्मानित रहा हो, जो सदा आत्माभिमानसे सिर उठाकर चलता रहा हो, जिसकी सुकृतिकी सारे शहरमें चर्चा होती रही हो वह कभी सर्वथा लज्जा शून्य नहीं हो सकता। लज्जा कुपथकी सबसे बड़ी शत्रु है। कुवासनाओंके भ्रममें पड़कर मुन्शीजीने समझा था, मैं इस कामको ऐसी गुप्त रीतिसे पूरा कर ले जाऊँगा कि किसीको कानोंकान खबर न होगी। पर उनका यह मनोरथ सिद्ध न हुआ। बाधायें आ खड़ी हुईं। उनके हटानेमें बड़े दुस्साहससे

काम लेना पडा। पर यह भी उन्होंने लज्जासे बचनेके निमित्त किया। जिसमें कोई यह न कहे कि अपनी स्वामिनीको धोखा दिया। इतना यत्न करनेपर भी वह निन्दासे न बच सके। बाजार की सौदा बेचनेवालियाँ भी अब उनका अपमान करती हैं। कुवासनाओंसे दबी हुई लज्जा-शक्ति इस कड़ी चोटको सहन न कर सकी। मुन्शीजी सोचने लगे, अब मुझे धन सम्पत्ति मिल जायगी, ऐश्वर्य्यवान् हो जाऊँगा, परन्तु निन्दासे मेरा पीछा न छूटेगा। अदालतका फैसला मुझे लोक निन्दासे न बचा सकेगा। ऐश्वर्य्यका फल क्या है? मान और मर्य्यादा। उससे हाथ धो बैठा तो इस ऐश्वर्य्यको लेकर क्या करूँगा? चित्तकी शक्ति खोकर, लोक-लज्जा सहकर, जन समुदायमे नीच बनकर और अपने घरमें कलहका बीज बोकर यह सम्पत्ति मेरे किस काम आवेगी? और, यदि वास्तवमें कोई न्याय शक्ति हो और वह मुझे इस दुष्कृत्यका दण्ड दे तो मेरे लिये सिवाय मुँहमे कालिख लगा कर निकल जानेके और कोई मार्ग न रहेगा। सत्यवादी मनुष्यपर कोई विपत्ति पड़ती है तो लोग उसके साथ सहानुभूति करते हैं। दुष्टोंकी विपत्ति लोगोंके लिये व्यंगकी सामग्री बन जाती है, उस अवस्था में ईश्वर अन्यायी ठहराया जाता है। मगर दुष्टोंकी विपत्ति ईश्वर-के न्यायको सिद्ध करती है। परमात्मन् इस दुर्दशासे किसी तरह मेरा उद्धार करो! क्यों न जाकर मैं भानुकुँवरिके पैरोंपर गिर पड़ूँ और विनय करूँ कि यह मुकद्दमा उठा लो? शोक! पहले यह बात मुझे क्यों न सूझी! अगर कलतक मैं उनके पास चला गया होता तो सब बात बन जाती। पर अब क्या हो सकता है। आज तो फैसला सुनाया जायगा।

मुन्शीजी देरतक इसी विषयमें पडे रहे, पर कुछ निश्चय न कर सकें कि क्या करें।

भानुकुँवरिको भी विश्वास हो गया कि अब गाँव हाथसे गया। बेचारी हाथ मलकर रह गयी। रातभर उसे नींद न आयी। रह-रहकर मुन्शी सत्यनारायणपर क्रोध आता था। हाय! पापी, ढोल बजाकर मेरा तीस हजारका माल लिये जाता है और मैं कुछ नहीं कर सकती। आज कलके न्याय करनेवाले बिल्कुल आँखके अन्धे हैं। जिस बातको सारी दुनिया जानती है उसमें भी उनकी दृष्टि नहीं पहुँचती। बस, दूसरोंकी आँखोंसे देखते हैं। कोरे कागजोंके गुलाम हैं। न्याय वह है कि दूधका दूध, पानीका पानी कर दे। यह नहीं कि खुद ही कागजोंके धोखेमें आ जाय, खुद ही पाखण्डियोंके जालमें फँस जाय। इसीसे तो ऐसे छली, कपटी, दगाबाज दुरात्माओंका साहस बढ़ गया है। खैर गाँव जाता है तो जाय लेकिन सत्यनारायण, तुम तो शहरमें कहीं मुँह दिखानेके लायक नहीं रहे!

इस खयालसे भानुकुँवरिको कुछ शान्ति हुई। अपने शत्रुकी हानि मनुष्यको अपने लाभसे भी अधिक प्रिय होती है। मानव-स्वभाव ही कुछ ऐसा है। तुम हमारा एक गाँव ले गये, नारायण चाहेंगे, तो तुम भी इससे सुख न पाओगे। तुम आप नरककी आगमें जलोगे, तुम्हारे घरमें कोई दिया जलानेवाला न रहेगा।

फैसलेका दिन आ गया। आज इजलासमें बड़ी भीड़ थी। ऐसे-ऐसे महानुभाव भी उपस्थित थे, जो बगुलोंकी तरह अफसरों-की बधाई और विदाईके सरोवरोंहीमें नजर आया करते हैं। वकीलों और मुख्तारोंकी काली पल्टन भी जमा थी। नियत

समयपर जज साहबने इजलासको सुशोभित किया। विस्तृत न्याय-भवनमें सन्नाटा छा गया। अहलमदने सन्दूकसे तजवीज निकाली। लोग उत्सुक होकर एक एक कदम और आगे खिसक गये।

जजने फैसला सुनाया—मुद्दईका दावा खारिज। दोनों पक्ष अपना-अपना खर्च सह लें।

यद्यपि फैसला लोगोंके अनुमानके अनुसार ही था तथापि जजके मुँहसे उसे सुनकर लोगोंमें हलचल-सी पड़ गयी। उदासीन भावसे इस फैसलेपर आलोचनायें करते हुए लोग धीरे-धीरे कमरे से निकलने लगे।

यकाएक भानुकुँवरि घूँघट निकाले इजलासपर आकर खड़ी हो गयी। जानेवाले लौट पड़े। जो बाहर निकल गये थे, दौड़कर आ गये और कौतूहलपूर्वक भानुकुँवरिकी तरफ ताकने लगे।

भानुकुँवरिने कम्पित स्वरमें जजसे कहा—सरकार, यदि हुक्म दें तो मैं मुन्शीजीसे कुछ पूछूँ।

यद्यपि यह बात नियमके विरुद्ध थी तथापि जजने दयापूर्वक आज्ञा दे दी।

सब भानुकुँवरिने सत्यनारायणकी तरफ देखकर कहा,—लालाजी! सरकारने तुम्हारी डिग्री तो कर ही दी, गाँव तुम्हें मुबारक रहे, मगर ईमान् आदमीका सब कुछ है। ईमानसे कह दो, गाँव किसका है?

हजारों आदमी यह प्रश्न सुनकर कौतूहलसे सत्यनारायणकी तरफ देखने लगे। मुन्शीजी विचारसागरमें डूब गये। हृदयक्षेत्रमें संकल्प और विकल्पमें घोर संग्राम होने लगा। हजारों मनुष्यों-

की आँखें उनकी तरफ जमी हुई थीं। यथार्थ बात अब किसीसे छिपी न थी। इतने आदमियोंके सामने असत्य बात मुँहसे न निकल सकी। लज्जाने जबान बन्द कर ली, "मेरा" कहनेमें काम बनता था। कोई बाधा न थी। किन्तु घोरतम पापका जो दण्ड समाज दे सकता है उसके मिलनेका पूरा भय था। 'आपका' कहनेसे काम बिगड़ता था। जीती जिताई बाजी हाथसे जाती थी। पर सर्वोत्कृष्ट कामके लिए समाजसे जो इनाम मिल सकता है उसके मिलनेकी पूरी आशा थी। आशाने भयको जीत लिया। उन्हे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे ईश्वरने मुझे अपना मुख उज्ज्वल करनेका यह अन्तिम अवसर दिया है। मै अब भी मानवसम्मान-का पात्र बन सकता हूँ। अब भी अपनी आत्माकी रक्षा कर सकता हूँ। उन्होंने आगे बढकर भानुकुँवरिको प्रणाम किया और काँपते हुए स्वरमें बोले—आपका।

हजारों मनुष्योंके मुँहसे एक गगनस्पर्शी ध्वनि निकली—सत्यकी जय।

जजने खड़े होकर कहा—यह कानूनका न्याय नही,

"ईश्वरीय न्याय"

है। इसे कथा न समझिये, सच्ची घटना है।

भानुकुँवरि और सत्यनारायण अब भी जीवित हैं। मुंशीजी-के इस नैतिक साहसपर लोग मुग्ध हो गये। मानवी न्यायपर ईश्वरीय न्यायने जो विलक्षण विजय पायी उसकी चर्चा शहर भरमे महीनो रही, भानुकुँवरि मुन्शीजीके घर गयी। उन्हें मनाकर लायी। फिर अपना कारोबार उन्हें सौंपा और कुछ दिनोंके उप-

रान्त वह गाँव उन्हींके नाम हिब्बा कर दिया। मुन्शीजीने भी उसे अपने अधिकारमें रखना उचित न समझा। कृष्णार्पण कर दिया। अब इसकी आमदनी दीन दुनियाँ और विद्यार्थियोंकी सहायतामें खर्च होती है।

शंखनाद—

[१]

भानु चौधरी अपने गाँवके मुखिया थे। गाँवमें उनका बड़ा मान था। दारोगाजी उन्हे टाट बिना जमीनपर बैठने न देते। मुखिया साहबकी ऐसी धाक बँधी हुई थी कि उनकी मर्जी बिना गाँवमें एक पत्ता भी नहीं हिल सकता था। कोई घटना चाहे वह सास बहूका विवाद हो, चाहे मेड़ या खेतका झगड़ा, चौधरी साहबके शासनाधिकारको पूर्णरूपसे सचेत करनेके लिये काफी थी। वह तुरन्त घटनास्थलपर जा पहुँचते। तहकीकात होने लगती, गवाह और सबूतके सिवा किसी अभियोगको सफलता सहित चलानेमे जिन बातोंकी जरूरत होती है, उन सबपर विचार होता और चौधरीजीके दर्बारसे फैसला हो जाता। किसीको अदालतक जानेकी जरूरत न पड़ती। हाँ, इस कष्टके लिये चौधरी साहब कुछ फीस जरूर ले लेते थे। यदि किसी अवसरपर फीस

मिलनेमें असुविधाके कारण उन्हें धीरजसे काम करना पड़ता तो गाँवमें आफत आ जाती थी। क्योंकि उनके धीरज और दरोगा-जीके क्रोधमें कोई घनिष्ठ सम्बन्ध था। साराश यह है कि चौधरी-जीसे उनके दोस्त दुश्मन सभी चौकन्ने रहते थे।

[२]

चौधरी महाशयके तीन सुयोग्य पुत्र थे। बड़े लड़के बितान एक सुशिक्षित मनुष्य थे। डाकियेके रजिस्टरपर दस्तखत कर लेते थे। ये बड़े अनुभवी, बड़े मर्मज्ञ, बड़े नीतिकुशल, थे, मिर्जईकी जगह कमीज पहनते, कभी कभी सिग्रेट भी पीते, जिससे उनका गौरव बढ़ता था। यद्यपि उनके ये दुर्व्यसन बूढ़े चौधरीको नापसन्द थे, पर बेचारे विवश थे, क्योंकि अदालत और कानूनके मामिले बितानके हाथोंमें थे। वह कानूनका पुतला था। कानूनके दफे जबानपर रखे रहते थे। गवाह गढनेमें वह पूरा उस्ताद था। मझले लड़के शानचौधरी कृषिविभागके अधिकारी थे, बुद्धिके मन्द लेकिन शरीरसे बड़े परिश्रमी। जहाँ घास न जमती हो वहाँ केसर जमा दें। तीसरे लड़केका नाम गुमान था। यह बड़ा रसिक साथही उद्दण्ड था। मुहर्रममें ढोल इतने जोरोंसे बजाता कि कानके पर्दे फट जाते। मछली फँसानेका बड़ा शौकीन था। बड़ा रंगीला जवान था। खजड़ी बजा-बजाकर जब वह मीठे स्वरसे खियाल गाता तो रंग जम जाता। उसे दंगलका ऐसा शौक था कि कोसोंतक धावा मारता, पर घरवाले कुछ ऐसे शुष्क थे कि उसके इन व्यसनोंसे तनिक भी सहानुभूति न रखते थे। पिता और भाइयोंने तो उसे ऊसर खेत समझ रखा था। घुड़की धमकी,

शिक्षा और उपदेश, स्नेह और विनय किसीका उसपर कुछ भी असर न हुआ। हाँ, भावजें अभीतक उसकी ओरसे निराश न हुई थीं। वह अभीतक उसे कड़वी दवाइयाँ पिलाये जाती थी। पर आलस्य वह राजरोग है जिसका रोगी कभी नहीं सभलता। ऐसा कोई विरला ही दिन जाता होगा कि बाके गुमानको भावजों के कटुवाक्य न सुनने पडते हों। यह विषैले शर कभी-कभी उसके कठोर हृदयमें चुभ भी जाते, किन्तु यह घाव रात भरसे अधिक न रहता। भोर होते ही थकानके साथ ही यह पीड़ा भी शान्त हो जाती। तडका हुआ, उसने हाथ मुँह धोया, बंसी उठायी और तालाबकी ओर चल खड़ा हुआ। भावजें फूलोंकी वर्षा किया करतीं, बूढ़े चौधरी पैंतरे बदलते रहते और भाई लोग तीखी निगाहसे देखा करते, पर अपनी धुनका पूरा बाका गुमान उन लोगोके बीचमेंसे इस तरह अकड़ता चला जाता जैसे कोई मस्त हाथी कुत्तोंके बीचसे निकल जाता है। उसे सुमार्ग पर लानेके लिये क्या क्या उपाय नहीं किये। बाप समझाता, बेटा ऐसी राह चलो जिसमें तुम्हें भी चार पैसे मिलें और गृहस्थीका भी निर्वाह हो। भाइयोंके भरोसे कबतक रहोगे, मै पका आम हूँ। आज टपक पड़ूं या कल। फिर तुम्हारा निवाह कैसे होगा। भाई बात भी न पूछेंगे, भावजोंका रग देखही रहे हो। तुम्हारे भी तो लड़के बाले हैं; उनका भार कैसे संभालोगे? खेतीमें जी न लगे, कहो कानिस्टेबलीमें भरती करा दूँ। बाँका गुमान खड़ा-खड़ा यह सब सुनता, लेकिन पत्थरका देवता था—कभी न पसीजता। इन महाशयके अत्याचारका दण्ड उनकी स्त्री बेचारीको भोगना पड़ता था, कड़ी मेहनतके घरमें जितने काम होते वह

उसीके सिर थापे जाते, उपले थापती, कुएँसे पानी लाती, आटा पीसती और इतनेपर भी जेठानियाँ सीधे मुँह बात न करतीं, वाक्य-वाणोंसे छेदा करती। एक बार जब वह पतिसे कई दिन रूठी रही तो बाके गुमान कुछ नर्म हुए। बापसे जाकर बोले—'मुझे कोई दूकान खुलवा दीजिए।' चौधरीने परमात्माको धन्यवाद दिया। फूले न समाये। कई सौ रुपये लगाकर कपड़ेकी दूकान खुलवा दी। गुमानके भाग जागे। तनजेबके चुननदार कुरते बनवाये, मलमलका साफा धानी रंगमें रँगवाया। सौदा बिके या न बिके उसे लाभ ही होता था। दूकान खुली हुई है, दस-पाँच गाढ़े मित्र जमे हुए हैं, चरसके दम और खियालकी तानें उड़ रही हैं—

चल झटपटरी, जमुना तट री खड़ो नटखट री'

इस तरह तीन महीने चैनसे कटे। बाके गुमानने खूब दिल खोलकर अरमान निकाले। यहाँ तक कि सारी लागत लाभ हो गयी। टाटके टुकड़ेके सिवा और कुछ न बचा। बूढ़े चौधरी कुएँ में गिरने चले, भावजोंने घोर आदोलन मचाया; अरे राम! हमारे बच्चे और हम चीथड़ोंको तरसे, गाढ़ेका एक कुर्त्ता भी न नसीब हो और इतनी बड़ी दूकान इस निखट्टूका कफन बन गयी। अब कौन मुँह दिखावेगा? कौन मुँह लेकर घरमे पैर रखेगा? किन्तु बाके गुमानके तीवर जरा भी मैले न हुए। वही मुँह लिए वह फिर घरमें आया और फिर वही पुरानी चाल चलने लगा। कानूनदाँ वितान इसके यह ठाठ-बाट देखकर जल जाता। मै सारे दिन पसीना बहाऊँ, मुझे नयनसुखका कुर्त्ता भी न मिले, यह अपाहिज सारे दिन चारपाई तोड़े और यों बन-ठन कर निकले।

ऐसे वस्त्र तो शायद मुझे अपने ब्याहमें भी न मिले होंगे। मीठे शानके हृदयमें भी कुछ ऐसे ही विचार उठते थे। अन्तमें जब यह जलन न सही गयी और अग्नि भड़की तो एक दिन कानूनदाँ बितानकी पत्नी गुमानके सारे कपड़े उठा लायी और उनपर मिट्टी-का तेल उडेल कर आग लगा दी। ज्वाला उठी। सारे कपड़े देखते-देखते जलकर राख हो गये। गुमान रोते थे। दोनों भाई खड़े तमाशा देखते थे। बूढ़े चौधरीने यह दृश्य देखा और सिर पीट लिया। यह द्वेषाग्नि है। घरको जलाकर तब बुझेगी।

[३]

यह ज्वाला तो थोड़ी देरमें शान्त हो गयी, परन्तु हृदयकी आग ज्यों की-त्यों दहकती रही। अन्तमे एक दिन बूढ़े चौधरीने घरके सब मेम्बरोंको एकत्रित किया और इस गूढ़ विषयपर विचार करने लगे कि बेड़ा कैसे पार हो। बितानसे बोले—बेटा, तुमने आज देखा, बात-की-बातमें सैकड़ों रुपयोंपर पानी फिर गया; अब इस तरह निर्वाह होना असम्भव है। तुम समझदार हो, मुकद्दमे मामले करते हो, कोई ऐसी राह निकालो कि घर डूबनेसे बचे। मै तो यह चाहता था कि जबतक चोला रहे सबको समेटे रहूँ, मगर भगवानके मनमें कुछ और ही है।

बितानकी नीतिकुशलता अपनी चतुर सहगामिनीके सामने लोप हो जाती थी। वह अभी इसका उत्तर सोच ही रहे थे कि श्रीमतीजी बोल उठीं—दादाजी! अब समझाने बुझानेसे काम न चलेगा, सहते सहते हमारा कलेजा पक गया। बेटेकी जितनी पीर बापको होगी, भाइयोंको उतनी क्या, उसकी आधी भी नहीं

हो सकती। मैं तो साफ कहती हूँ, गुमानका तुम्हारी कमाईमें हक है, उन्हें कञ्चनके कौर खिलाओ और चाँदीके हिंडोलेमें झुलाओ। हममें न इतना बूता है न इतना कलेजा, हम अपनी झोंपडी अलग बना लेंगे, हाँ जो कुछ हमारा हो वह हमको मिलना चाहिये। बाँट-बखरा कर दीजिये। बलासे चार आदमी हँसेंगे, अब कहाँतक दुनियाकी लाज ढोयें।

नीतिज्ञ बितानपर इस प्रबल वक्तृताका असर हुआ, वह उनके विकसित और प्रमुदित चेहरेसे झलक रहा था। उनमें स्वयं इतना साहस न था कि इस प्रस्तावको इतनी स्पष्टतासे व्यक्त कर सकते। नीतिज्ञ महाशय गम्भीरतासे बोले—जायदाद मुश्तरका, मन्कूला या गैर मन्कूला, आपके हीन हयात तकसीम की जा सकती है, इसकी नजीरें मौजूद हैं। जमींदारको साकितुल मिल्कियत करनेका कोई इस्तहकाक नही है।

अब मन्दबुद्धि शानकी बारी आयी, पर बेचारा किसान, बैलोंके पीछे आँखे बन्द करके चलनेवाला, ऐसे गूढ़ विषयपर कैसे मुँह खोलता। दुविधामें पड़ा हुआ था। तब उसकी सत्यवक्ता धर्मपत्नीने अपनी जेठानीका अनुसरण कर यह कठिन कार्य सम्पन्न किया। बोली—बड़ी बहिनने जो कुछ कहा है उसके सिवा और दूसरा उपाय नहीं है। कोई तो कलेजा तोड़-तोड़कर कमावे, मगर पैसे-पैसेको तरसे, तन ढाकनेको वस्त्र तक न मिलें और कोई सुखकी नीद सोवे और हाथ बढ़ा-बढ़ाके खाय, ऐसी अन्धेर नगरीमें अब हमारा निबाह न होगा।

शान चौधरीने भी इस प्रस्तावका मुक्तकण्ठसे अनुमोदन किया। अब बूढ़े चौधरी गुमानसे बोले—क्यों बेटा, तुम्हें भी यही

मजूर है ? अभी कुछ नही बिगडा है। यह आग अब भी बुझ सकती है। काम सबका प्यारा होता है, चाम किसीका प्यारा नहीं होता, बोलो क्या बोलते हो ? कुछ काम-धन्धा करोगे या अभी आँखें नही खुली।

गुमानमे धैर्य्यकी कमी नही थी। बातोंको इस कान सुन उस कान उड़ा देना उसका नित्यकर्म्म था। किन्तु भाइयोंकी इस 'जन मुरीदी' पर उसे क्रोध आ गया। बोला—भाइयोंकी जो इच्छा है वही मेरे मनमे भी लगी हुई है, मै भी इस जजालसे अब भागना चाहता हूँ। मुझसे न मजूरी हुई, न होगी। जिसके भाग्यमें चक्की पीसना बदा हो, वह पीसे। मेरे भाग्यमें तो चैन करना लिखा हुआ है, मै क्यों अपना सिर ओखलीमे दूँ। मै तो किसीसे काम करनेको नही कहता। आप लोग क्यों मेरे पीछे पड़े हुए हैं। अपनी-अपनी फिक्र कीजिये, मुझे आध सेर आटेकी कमी नही है।

इस तरहकी सभाये कितनी ही बार हो चुकी थी, परन्तु इस देशकी सामाजिक और राजनैतिक सभाओंकी तरह इनसे भी कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता था। दो-तीन दिन गुमानने घरपर खाना नहीं खाया; जतनसिंह ठाकुर शौकीन आदमी थे, उन्हींकी चौपालमें पड़ा रहता। अन्तमें बूढ़े चौधरी गये और मनाके लाये, अब फिर वह पुरानी गाड़ी अड़ती, मचलती, हिलती, चलने लगी।

[४]

पाडेके घरके चूहोंकी तरह चौधरीके घरके बच्चे भी सयाने

थे। उनके लिए मिट्टीके घोड़े और लकड़ीकी नावें, कागजकी नावें थी। फलोंके विषयमें उनका ज्ञान असीम था। गूलर और जंगली बेरके सिवा कोई ऐसा फल न था जिसे वह बीमारियोंका घर न समझते हों। लेकिन गुरदीनके खोंचेमें ऐसा प्रबल आकर्षण था कि उसकी ललकार सुनते ही उनका सारा ज्ञान व्यर्थ हो जाता था। साधारण बच्चोंकी तरह यदि वह सोते भी हों ता चौंक पड़ते थे। गुरदीन उस गॉवमे साप्ताहिक फेरे लगाता था। उसके शुभागमनकी प्रतीक्षा और आकाक्षामें कितने ही बालकोंको बिना किंडरगार्टनकी रगीन गोलियोंके ही सख्यायें और दिनोंके नाम याद हो गये थे। गुरदीन बूढ़ासा मैलाकुचैला आदमी था, किन्तु आसपासमें उसका नाम उपद्रवी लड़कोके लिये हनुमानमत्रसे कम न था। उसकी आवाज सुनते ही उसके खोंचेपर बालकोंका ऐसा धावा होता कि मक्खियोंकी असख्य सेनाको भी रणस्थलसे भागना पड़ता था, और जहॉ बच्चोंके लिए मिठाइयाँ थीं, वहॉ गुरदीनके पास माताओके लिए इससे भी ज्यादा मीठी बाते थी। मॉ कितना ही मना करती रहे, बार बार पैसे न रहनेका बहाना करे, पर गुरदीन चटपट मिठाइयोका दोना बच्चेके हाथमें रख ही देता और स्नेहपूर्ण भावसे कहता—बहूजी! पैसोंकी कुछ चिन्ता न करो, फिर मिलते रहेंगे, कही भागे थोड़े ही जाते हैं। नारायण तुमको बच्चे दिये हैं तो मुझे भी उनकी न्योछावर मिल जाती है, उन्हींकी बदौलत मेरे बालबच्चे भी जीते हैं, अभी क्या, ईश्वर इनका मौर तो दिखावे, फिर देखना कैसो ठनगन करता हूँ।

गुरदीनरामका यह व्यवहार चाहे वाजिज्य नियमोंके प्रतिकूल ही क्यों न हो, चाहे 'नौ नक्द न तेरह उधार' वाली कहा-

वत अनुभव-सिद्ध ही क्यों न हो किन्तु मिष्टभाषी गुरदीनको कभी अपने इस व्यवहारसे पछताने या उसमें सशोधन करनेकी जरूरत नही हुई।

मङ्गलका शुभ दिन था, बच्चे बडी बेचैनीसे अपने दरवाजों पर खड़े गुरदीनकी राह देख रहे थे। कई उत्साही लड़के पेड़ोपर चढ़ गये थे और कोई-कोई अनुरागसे विवश होकर गाँवसे बाहर निकल गये थे। सूर्य्य भगवान अपना सुनहरा थाल लिये पूरबसे पच्छिममें जा पहुँचे थे कि गुरदीन आता हुआ दिखायी दिया। लड़कोंने दौड़कर उसका दामन पकड़ा और आपसमें खीचातानी होने लगी। कोई कहता था, मेरे घर चलो, कोई अपने घरका न्योता देता था। सबमें पहले भानु चौधरीका मकान पड़ा, गुरदीनने अपना खोंचा उतार दिया। मिठाइयोंकी लूट शुरू हो गयी। बालकों और स्त्रियोंका ठठ्ठ लग गया। हर्ष विषाद, सन्तोष और लोभ, ईर्षा और जलनकी नाट्यशाला सज गयी। कानूनदाँ बितानकी पत्नी भी अपने तीनों लड़कोंको लिए हुए निकली। शानकी पत्नी भी अपने दोनों लड़कोंके साथ उपस्थित हुई। गुरदीनने मीठी बातें करनी शुरू कीं। पैसे चोलीमे रखे, धेले-धेलेकी मिठाई दी, धेले-धेलेका आशीर्वाद। लड़के दोने लिये उछलते-कूदते घरमे दाखिल हुए। अगर सारे गाँवमे कोई ऐसा बालक था; जिसने गुरदीनकी उदारतासे लाभ न उठाया हो तो वह बाँके गुमानका लड़का धान था।

यह कठिन था कि बालक धान अपने भाइयों, बहिनोंको हँस-हँस और उछल-उछल कर मिठाइयाँ खाते देखे और सब्र कर जाय। उसपर तुर्रा यह कि वह उसे मिठाइयाँ दिखा-दिखाकर

ललचाते और चिढ़ाते थे। बेचारा घान चीखता था और अपनी माताका आँचल पकड़-पकड़कर दरवाजेकी तरफ खींचता था। पर वह अबला क्या करे। उसका हृदय बच्चेके लिये ऐंठ ऐंठ कर रह जाता था। उसके पास एक पैसा भी नहीं था। अपने दुर्भाग्यपर, जेठानियोंकी निठुरतापर और सबसे ज्यादा अपने पतिके निखट्टूपनपर कुढ़-कुढ़कर रह जाती थी। अपना आदमी ऐसा निकम्मा न होता तो क्यों दूसरोंका मुँह देखना पड़ता, क्यों दूसरोंके धक्के खाने पड़ते। उसने घानेको गोदमें उठा लिया और प्यारसे दिलासा देने लगी—'बेटा! रोओ मत, अबकी गुरदीन आवेगा तो मैं तुम्हें बहुतसी मिठाई ले दूँगी, मैं इससे अच्छी मिठाई बाजारसे मँगवा दूँगी, तुम कितनी मिठाई खाओगे।' यह कहते-कहते उसकी आँखें भर आयीं; आह! यह मनहूस मङ्गल आज ही फिर आवेगा और फिर यही बहाने करने पड़ेंगे! हाय! अपना प्यारा बच्चा धेलेकी मिठाईको तरसे और घरमें किसीका पत्थरसा कलेजा न पसीजे। वह बेचारी तो इन चिन्ताओंमें डूबी हुई थी और घान किसी तरह चुप ही न होता था। जब कुछ वश न चला तो माँकी गोदसे उतरकर जमीनपर लोटने लगा और रो-रोकर दुनिया सिरपर उठा ली। माँने बहुत बहलाया, फुसलाया, यहाँ तक कि उसे बच्चेके इस हठपर क्रोध आ गया। मानव हृदयके रहस्य कभी समझनेमें नहीं आते। कहाँ तो बच्चेको प्यारसे चिपटाती थीं, कहाँ ऐसी झल्लाई कि उसे दो तीन थप्पड़ जोरसे लगाये और घुड़ककर बोली—चुप रह अभागे! तेरा ही मुँह मिठाई खानेका है, अपने दिनको नहीं रोता। मिठाई खाने चला है।

बाका गुमान अपनी कोठरीके द्वारपर बैठा हुआ यह कौतुक बड़े ध्यानसे देख रहा था। वह इस बच्चेको बहुत चाहता था। इस वक्तके थप्पड़ उसके हृदयमें तेज भालेके समान लगे और चुभ गये। शायद उसका अभिप्राय भी यही था। धुनियाँ रूईको धुननेके लिये तातपर चोट लगाता है।

जिस तरह पत्थर और पानीमें आग छिपी रहती है, उसी तरह मनुष्यके हृदयमें भी,—चाहे वह कैसा ही क्रूर और कठोर क्यों न हो, उत्कृष्ट और कोमल भाव छिपे रहते हैं। गुमानकी आँखें भर आयी, आँसूकी बूँदे बहुधा हमारे हृदयकी मलीनताको उज्ज्वल कर देती हैं। गुमान सचेत हो गया। उसने जाकर बच्चे को गोदमें उठा लिया और अपनी पत्नीसे करुणोत्पादक स्वरमें बोला—बच्चेपर इतना क्रोध क्यों करती हो। तुम्हारा दोषी मैं हूँ, मुझको जो दण्ड चाहे दो, परमात्माने चाहा तो कलसे लोग इस घरमे मेरा और मेरे बाल-बच्चोंका भी आदर करेंगे। तुमने मुझे आज सदाके लिये इस तरह जगा दिया, मानो मेरे कानोंमें शंखनाद कर कर्मपथमे प्रवेश करनेका उपदेश दिया हो।

खून सफेद—

[१]

चैतका महीना था, लेकिन वे खलिहान, जहाँ अनाजकी ढेरियाँ लगी रहती थीं, पशुओंके चरणस्थल बने हुए थे, जहाँ घरोंसे फाग और बसन्तकी अलाप सुनाई पडती, वहाँ आज भाग्यका रोना था। सारा चौमासा बीत गया, पानीकी एक बून्द न गिरी। जेठमें एक बार मूसलाधार वृष्टि हुई थी, किसान फूले न समाये, खरीफकी फसल बो दी, लेकिन इन्द्रदेवने अपना सर्वस्व शायद एकही बार लुटा दिया था। पौधे उगे, बढ़े और फिर सूख गये। गोचरभूमिमें घास न जमी। बादल आते, घटायें उमड़ती, ऐसा मालूम होता कि जलपथ एक हो जायगा, परन्तु वे आशाकी नहीं, दुःखकी घटायें थीं। किसानोंने बहुतेरे जप-तप किये, ईंट और पत्थर देवी-देवताओंके नामसे पुजाये, बलिदान किये, पानीकी अभिलाषामें रक्तके पनाले बह गये, लेकिन इन्द्रदेव किसी तरह न पसीजे। न खेतोंमें पौधे थे, न गोचरोंमें घास, न तालाबमें पानी. बड़ी मुसीबतका सामना था। जिधर देखिये, धूल उड़ रही थी। दरिद्रता और क्षुधापीड़ाके दारुण दृश्य दिखायी देते थे। लोगोंने पहिले तो गहने और बरतन गिरवी रखे और अन्तमे बेच डाले। फिर जानवरोंकी बारी आयी और जब जीविकाका अन्य कोई सहारा न रहा, तब जन्म-भूमिपर जान देनेवाले किसान बालबच्चोंको लेकर मजदूरी करने निकल पड़े। अकाल-पीड़ितोंकी सहायताके लिये कहीं-कहीं सरकारकी सहायतासे काम

खुल गया था। बहुतेरे वही जाकर जमे। जहाँ जिसको सुभीता हुआ वह उधर ही जा निकला।

[२]

सन्ध्याका समय था। जादोराय थकामाँदा आकर बैठ गया और स्त्रीसे उदास होकर बोला—'दरखास्त नामंजूर हो गयी।'' यह कहते कहते वह आँगनमे जमीनपर लेट गया। उसका मुख पीला पड रहा था और आँते सिकुड़ी जा रही थीं। आज दो दिनसे उसने दानेकी सूरत नही देखी। घरमें जो कुछ विभूति थी। गहने, कपडे, बरतन, भाडे सब पेटमें समा गये। गाँवका साहूकार भी पतिव्रता स्त्रियोंकी भाँति आँखे चुराने लगा। केवल तकावीका सहारा था, उसीके लिये दरखास्त दी थी, लेकिन आज वह भी नामन्जूर हो गयी, आशाका झिलमिलाता हुआ दीपक बुझ गया।

देवकीने पतिको करुणादृष्टिसे देखा। उसकी आँखोंमें आँसू उमड़ आये। पति दिनभरका थका माँदा घर आया है। उसे क्या खिलावे? लज्जाके मारे वह हाथ-पैर धोनेके लिये पानी भी न लायी। जब हाथ-पैर धोकर आशाभरी चितवनसे वह उसकी ओर देखेगा तब वह उसे क्या खानेको देगी? उसने आप कई दिनसे दानेकी सूरत नही देखी थी। लेकिन इस समय उसे जो दुःख हुआ वह क्षुधातुरताके कष्टसे कई गुना अधिक था। स्त्री घरकी लक्ष्मी है। घरके प्राणियोंको खिलाना पिलाना वह अपना कर्त्तव्य समझती है। और चाहे यह उसका अन्याय ही क्यों न हो, लेकिन अपनी दीन हीन दशापर जो मानसिक वेदना उसे होती है वह पुरुषोंको नहीं हो सकती।

इठात् उसका बच्चा साधो नीदसे चौंका और मिठाईके लालचमें आकर वह बापसे लिपट गया। इस बच्चेने आज प्रातः काल चनेकी रोटीका एक टुकडा खाया था और तबसे कई बार उठा और कईबार रोते रोते सो गया। चार वर्षका नादान बच्चा, उसे वर्षा और मिठाइयोंमें कोई सम्बन्ध नहीं दिखाई देता था। जादोरायने उसे गोदमें उठा लिया और उसकी ओर दुःख भरी दृष्टिसे देखा। गर्दन झुक गयी और हृदय-पीड़ा आँखोंमे न समा सकी।

[३]

दूसरे दिन यह परिवार भी घरसे बाहर निकला। जिस तरह पुरुषके चित्तसे अभिमान और स्त्रीकी आँखसे लज्जा नहीं निकलती उसी तरह अपनी मेहनतसे रोटी कमानेवाला किसान भी मजदूरी की खोजमें घरसे बाहर नहीं निकलता। लेकिन हा पापी पेट, तू सब कुछ कर सकता है! मान और अभिमान, ग्लानि और लज्जा ये सब चमकते हुए तारे तेरी काली घटाओकी ओटमे छिप जाते हैं।

प्रभातका समय था। ये दोनों विपत्तिके सताये घरसे निकले। जादोरायने लड़केको पीठपर लिया। देवकीने फटेपुराने कपड़ोंकी वह गठरी सिरपर रखी, जिसपर विपत्तिको भी तरस आता। दोनों की आँखें आँसुओंसे भरी थीं। देवकी रोती थी। जादोराय चुप-चाप था। गाँवके दो-चार आदमियोंसे भेंट भी हुई, किन्तु किसीने इतना भी न पूछा कि कहाँ जाते हो? किसीके हृदयमें सहानुभूति-का वास न था।

जब ये लोग लालगज पहुँचे उस समय सूर्य्य ठीक सिरपर था, देखा मीलों तक आदमी ही-आदमी दिखाई देते थे। लेकिन हर चेहरेपर दीनता और दुखके चिह्न झलक रहे थे।

बैसाखकी जलती हुई धूप थी। आगके झोंके जोर-जोरसे हरहराते हुए चल रहे थे। ऐसे समयमें हड्डियोंके अगणित ढाँचे जिनके शरीरपर किसी प्रकारका कपड़ा न था, मिट्टी खोदनेमें लगे हुए थे मानों वह मरघट भूमि थी, जहाँ मुर्दे अपने हाथों अपनी कबरें खोद रहे थे। बूढ़े और जवान, मर्द और बच्चे, सबके-सब ऐसे निराश और विवश होकर काममें लगे हुए थे मानो मृत्यु और भूख उनके सामने बैठी घूर रही है। इस आफत में न कोई किसीका मित्र था न हितू। दया, सहृदयता और प्रेम ये सब माननीय भाव है; जिनका कर्त्ता मनुष्य है, प्रकृतिने हमको केवल एक भाव प्रदान किया है और वह स्वार्थ है। 'मानवीय भाव बहुधा कपटी मित्रोंकी भाँति हमारा साथ छोड़ देते हैं, पर यह ईश्वर प्रदत्त गुण कभी हमारा गला नहीं छोड़ता।

[४]

आठ दिन् बीत गये थे। सन्ध्या समय काम समाप्त हो चुका था। डेरेसे कुछ दूर आमका एक बाग था। वहीं एक पेड़के नीचे जादोराय और देवकी बैठी हुई थी। दोनों ऐसे कृश हो रहे थे कि उनकी सूरत नहीं पहिचानी जाती थी। अब वह स्वाधीन कृषक नहीं रहे। समयके हेर फेरसे आज दोनों मजदूर बने बैठे हैं।

जादोरायने बच्चेको जमीनपर सुला दिया। उसे कई दिनसे बुखार आ रहा है। कमल-सा चेहरा मुरझा गया है। देवकीने

धीरेसे हिलाकर कहा—बेटा ! आँखे खोलो। देखो साझ हो-गयी।

साधोने आँखे खोल दी, बुखार उतर गया था, बोला—क्या हम घर आ गये माँ ?

घरकी याद आ गयी, देवकीकी आँखें डबडबा आईं। उसने कहा—नहीं बेटा ! तुम अच्छे हो जाओगे, तो घर चलेंगे। उठकर देखो, कैसा अच्छा बाग है ?

साधो माँ के हाथोंके सहारे उठा और बोला—माँ! मुझे बड़ी भूख लगी है, लेकिन तुम्हारे पास तो कुछ नहीं है। मुझे क्या खानेको दोगी ?

देवकीके हृदयमें चोट लगी, पर धीरज धरके बोली—नहीं बेटा, तुम्हारे खानेको मेरे पास सब कुछ है। तुम्हारे दादा पानी लाते हैं तो मैं नरम-नरम रोटियाँ अभी बनाये देती हूँ।

साधोने माँकी गोदमें सिर रख लिया और बोला—'माँ! मैं न होता तो तुम्हें इतना दुःख तो न होता।' यह कहकर वह फूट-फूट कर रोने लगा। यह वही बेसमझ बच्चा है जो दो सप्ताह पहिले मिठाइयोंके लिए दुनिया सिरपर उठा लेता था। दुःख और चिन्ताने कैसा अनर्थ कर दिया है। यह विपत्तिका फल है। कितना दुःखपूर्ण, कितना करुणाजनक व्यापार है !

इसी बीचमें कई आदमी लालटेन लिये हुए वहाँ आये। फिर गाड़ियाँ आयी। उनपर डेरे और खेमे लदे हुए थे। दम के-दममे वहाँ खेमें गड़ गये। सारे बागमें चहल पहल नजर आने लगी। देवकी रोटियाँ सेक रही थी, साधो धीरे-धीरे उठा और आश्चर्यसे देखता हुआ, एक डेरेके नजदीक जाकर खड़ा हो गया।

[५]

पादरी मोहनदास खेमेसे बाहर निकले तो साधो उन्हें खड़ा दिखायी दिया। उसकी सूरतपर उन्हें तरस आ गया। प्रेमकी नदी उमड आयी। बच्चेको गोदमें लेकर खेमेमें एक गद्देदार कोंचपर बैठा दिया और तब उसे बिस्कुट और केले खानेको दिये। लड़केने अपनी जिन्दगीमें इन स्वादिष्ट चीजोंको कभी न देखा था। बुखारको बेचैन करनेवाली भूख अलग मार रही थी। उसने खूब मनभर खाया और तब कृतज्ञ नेत्रोंसे देखते हुए पादरी साहबके पास जाकर बोला—तुम हमको रोज ऐसी चीजें दिलाओगे?

पादरी साहब इस भोलेपनपर मुस्कराके बोले, मेरे पास इससे भी अच्छी-अच्छो चीजें हैं।

इसपर साधोरायने कहा—अब मै रोज तुम्हारे पास आऊँगा। माँके पास ऐसी अच्छी चीजे कहाँ? वह तो मुझे चनेकी रोटियाँ खिलाती है।

उधर देवकीने रोटियाँ बनायीं और साधोको पुकारने लगी। साधोने माके पास जाकर कहा—मुझे साहबने अच्छी-अच्छी चीज खानेको दी हैं। साहब बड़े अच्छे हैं।

देवकीने कहा—मैंने तुम्हारे लिए नरम-नरम रोटियाँ बनाई हैं, आओ तुम्हें खिलाऊँ।

साधो बोला—'अब मैं न खाऊँगा। साहब कहते थे कि मैं तुम्हें रोज अच्छी-अच्छी चीजें खिलाऊँगा। मैं अब उनके साथ रहा करूँगा। माँने समझा कि लड़का हँसी कर रहा है। उसे छातीसे लगाकर बोली—क्यों बेटा! हमको भूल जाओगे? देखो, मैं तुम्हें कितना प्यार करती हूँ।

साधो तुतलाकर बोला—'तुम तो मुझे रोज चनेकी रोटियाँ दिया करती हो, तुम्हारे पास तो कुछ नहीं है। साहब मुझे केले और आम खिलावेंगे।', यह कहकर वह फिर खेमेकी ओर भागा और रातको वहीं सो रहा।

पादरी मोहनदासका पड़ाव वहाँ तीन दिन रहा। साधो दिनभर उन्हींके पास रहता। साहबने उसे मीठी दवाइयाँ दीं। उसका बुखार जाता रहा। वह भोले भाले किसान यह देखकर साहबको आशीर्वाद देने लगे। लड़का भला चङ्गा हो गया और आरामसे है। साहबको परमात्मा सुखी रखे। उन्होंने बच्चे-की जान रख ली।

चौथे दिन रातको ही वहासे पादरी साहबने कूच किया। सुबहको जब देवकी उठी तो साधोका वहाँ पता न था। उसने समझा कहीं टपके ढूँढ़ने गया होगा, किन्तु थोड़ी देर देखकर उसने जादोरायसे कहा—लल्लू यहाँ नहीं है।

उसने भी यही कहा, कहीं टपके ढूँढता होगा।

लेकिन जब सूरज निकल आया और काम पर चलनेका वक्त हुआ, तब जादोरायको कुछ संशय हुआ। उसने कहा—तुम यहीं बैठी रहना, मैं अभी उसे लिये आता हूँ।

जादोने आस-पासके सब बागोंको छान डाला और अन्तमें जब दस बज गये तो निराश लौट आया। साधो न मिला, यह देखकर देवकी ढाढ़ें मारकर रोने लगी।

फिर दोनों अपने लालकी तलाशमें निकले। अनेक विचार चित्तमें आने-जाने लगे। देवकीको पूरा विश्वास था कि साहबने उसपर कोई मन्त्र डालकर वशमें कर लिया। लेकिन जादोको

इस कल्पनाके मान लेनेमें कुछ सन्देह था। बच्चा इतनी दूर अनजान रास्ते पर अकेले नहीं आ सकता। फिर भी दोनों गाड़ीके पहियो और घोड़ेके टापोंकी निशान देखते चले जाते थे। यहाँतक कि वे एक सड़कपर आ पहुँचे। वहाँ गाड़ीके बहुतसे निशान थे, उस विशेष लीककी पहचान न हो सकती थी। घोड़ेके टापभी एक झाड़ीकी तरफ जाकर गायब हो गये। आशाका सहारा टूट गया। दोपहर हो गयी थी। दोनों धूपके मारे बेचैन और निराशासे पागल हो रहे थे। वही एक वृक्षकी छायामें बैठ गये। देवकी विलाप करने लगी। जादोरायने उसे समझाना शुरूकिया।

जब जरा धूपकी तेजी कम हुई तो दोनों फिर आगे चले। किन्तु अब आशाकी जगह निराशा साथ थी, घोड़ेकी टापोके साथ उम्मेदका धुँधला निशान गायब हो गया था।

शाम हो गयी। इधर उधर गायों, बैलोंके झुण्ड निर्जीवसें पड़े दिखायी देते थे। यह दोनों दुखिया हिम्मत हारकर एक पेड़के नीचे टिक रहे। उसी वृक्षपर मैनेका एक जोड़ा बसेरा लिये हुए था। उनका नन्हा-सा शावक आज ही एक शिकारीके चंगुलमें फँस गया था। दोनों दिनभर उसे खोजते फिरे। इस समय निराश होकर बैठ रहे। देवकी और जादोको अभीतक आशाकी झलक दिखायी देती थी। इसीलिये वे बेचैन थे।

तीन दिनतक ये दोनों अपने खोये हुए लालकी तलाश करते रहे। दानेसे भेट नहीं, प्याससे बेचैन होते तो दो चार घूँट पानी गलेके नीचे उतार लेते।

आशाकी जगह निराशाका सहारा था। दुःख और करुणाके सिवाय और कोई वस्तु नहीं। किसी बच्चेके पैरके निशान देखते

तो उनके दिलोमें आशा तथा भयकी लहरें उठने लगती थीं।

लेकिन प्रत्येक पग उन्हे अभीष्ट स्थानसे दूर लिये जाता था।

[६]

इस घटनाको हुए चौदह वर्ष बीत गये। इन चौदह वर्षोंमें सारी काया पलट गयी। चारों ओर रामराज्य दिखायी देने लगा। इन्द्रदेवने कभी उस तरह अपनी निर्दयता न दिखायी और न जमीनने ही। उमड़ी हुई नदियोकी तरह अनाजसे ढेकियाँ भर चली। उजड़े हुए गाँव बस गये। मजदूर किसान बन बैठे और किसान जायदादकी तलाशमें नजरें दौड़ाने लगे। वही चैतके दिन थे। खरिहानोंमें अनाजके पहाड़ खड़े थे। भाट और भिखमंगे किसानोंकी बढ़तीके तराने गा रहे थे। सुनारोंके दरवाजे-पर सारे दिन और आधी राततक गाहकोंका जमघट बना रहता था। दरजीको सिर उठानेकी फुरसत न थी। इधर-उधर दरवाजोंपर घोड़े हिनहिना रहे थे। देवीके पुजारियोंको अजीर्ण हो रहा था।

जादोरायके दिन भी फिरे। घरपर छप्परकी जगह खपरैल हो गया है। दरवाजेपर अच्छे बैलोंकी जोड़ी बँधी हुई है। वह अब अपनी बहलीपर सवार होकर बाजार जाया करता है। उसका बदन अब उतना सुडौल नही है। पेटपर इस सुदशाका विशेष प्रभाव पड़ा है और बाल भी सफेद हो चले हैं। देवकीकी गिनती भी गाँवकी बूढ़ी औरतोंमें होने लगी है। व्यावहारिक बातोंमें उसकी बड़ी पूछ हुआ करती है। जब वह किसी पड़ोसिनके घर जाती है तो वहाँकी बहुएँ भयके मारे थरथराने लगती हैं।

उसके कटुवाक्य और तीव्र आलोचनाकी सारे गाँवमें धाक बँधी हुई है। महीन कपड़े अब उसे अच्छे नही लगते, लेकिन गहनोंके बारेमें वह इतनी उदासीन नहीं है।

उनके जीवनका दूसरा भाग इससे कम उज्ज्वल नहीं है। उनकी दो सन्ताने हैं। लड़का माधोसिंह अब खेतीबारीके काममें बापकी मदद करता है। लड़कीका नाम शिवगौरी है। वह भी माँको चक्की पीसनेमें सहायता दिया करती है और खूब गाती है। बर्तन धोना उसे पसन्द नहीं, लेकिन चौका लगानेमें निपुण है। गुड़ियोंके व्याह करनेसे उसका जी कभी नही भरता। आये दिन गुड़ियोंके विवाह होते रहते हैं। हाँ, इनमें किफायतका पूरा ध्यान रहता है। खोये हुए साधोकी याद अभी तक बाकी है। उसकी चर्चा नित्य हुआ करती है और कभी बिना रुलाये नहीं रहती। देवकी कभी-कभी सारे दिन उस लाड़ले बेटेकी सुधमें अधीर रहा करती है।

साझ हो गयी थी। बैल दिन भरके थके-मादे सिर झुकाये चले आते थे। पुजारीने ठाकुर द्वारेमें घंटा बजाना शुरू किया। आजकल फसलके दिन हैं। रोज पूजा होती है, जादोराय खाटपर बैठे नारियल पी रहे थे। शिवगौरी रास्तेमें खड़ी उन बैलोंको कोस रही थी जो उसके भूमिस्थ विशाल भवनका निरादर करके उसे रौंदते चले जाते थे। घड़ियाल और घंटेकी आवाज सुनते ही जादोराय भगवानका चरणामृत लेनेके लिए उठे ही थे कि उन्हें अकस्मात् एक नवयुवक दिखायी पड़ा, जो भूँकते हुए कुत्तों को दुतकारता, बाईसकिलको आगे बढाता हुआ चला आ रहा था। उसने उनके चरणोंपर अपना सिर रख दिया। जादोरायने

गौरसे देखा और तब दोनों एक दूसरेसे लिपट गये। माधो भौंचक होकर बाईसकिलको देखने लगा। शिवगौरी रोती हुई घरमें भागी और देवकीसे बोली—'दादाको साहबने पकड़ लिया है। देवकी घबरायी हुई बाहर आयी। साधो उसे देखते ही उसके पैरोंपर गिर पड़ा। देवकी लड़केको छातीसे लगाकर रोने लगी। गाँवके मर्द, औरतें और बच्चे सब जमा हो गये। मेला-सा लग गया।

[७]

साधोने अपने मातापितासे कहा—मुझ अभागेसे जो कुछ अपराध हुआ हो उसे क्षमा कीजिये, मैंने अपनी नादानीसे स्वयं बहुत कष्ट उठाये और आप लोगोंको भी दुःख दिया, लेकिन अब मुझे अपनी गोदमें लीजिये।

देवकीने रोककर कहा—जब तुम हमको छोड़कर भागे थे तो हम लोग तुम्हें तीन दिनतक बे-दाना-पानीके ढूँढते रहे, पर जब निराश हो गये, तब अपने भाग्यको रोककर बैठ रहे। तबसे आजतक कोई ऐसा दिन न गया होगा कि तुम्हारी सुधि न आयी हो। रोते-रोते एक युग बीत गया, अब तुमने खबर ली है। बताओ बेटा! उस दिन तुम कैसे भागे और कहाँ जाकर रहे?

साधोने लज्जित होकर उत्तर दिया—माताजी अपना हाल क्या कहूँ, मैं पहर रात रहे आपके पाससे उठकर भागा। पादरी साहबके पड़ावका पता शाम हीको पूछ लिया था। बस पूछता हुआ दोपहरको उनके पास पहुँच गया। साहबने मुझे पहिले समझाया कि अपने घर लौट जाओ, लेकिन जब

मै किसी तरह राजी न हुआ तो उन्होंने मुझे पूना भेज दिया। मेरी तरह वहाँ सैकड़ों लड़के थे। वहाँ बिस्कुट और नारगियोंका भला क्या जिक्र! जब मुझे आप लोगोंकी याद आती, मै अक्सर रोया करता। मगर बचपनकी उम्र थी, धीरे-धीरे उन्ही लोगोसे हिल-मिल गया। हाँ, जबसे कुछ होश हुआ है और अपना-पराया समझने लगा हूँ तबसे अपनी नादानीपर हाथ मलता रहा हूँ। रात-दिन आप लोगोंकी रट लगी हुई थी। आज आप लोगोंके आशीर्वादसे यह शुभ दिन देखनेको मिला। दूसरोंमें बहुत दिन कटे, बहुत दिनोंतक अनाथ रहा। अब मुझे अपनी सेवामें रखिए। मुझे अपनी गोदमें लीजिए। मैं प्रेमका भूखा हूँ। बरसोंसे मुझे जो सौभाग्य नही मिला, वह अब दीजिये।

गाँवके बहुतसे बुड्ढे जमा थे। उनमेंसे जगतसिंह बोले—तो क्यों बेटा! तुम इतने दिनोंतक पादरियोंके साथ रहे! उन्होंने तुमको भी पादरी बना लिया होगा?

साधोने सिर झुकाकर कहा—जी हाँ यह तो उनका दस्तूर ही है।

जगतसिंहने जादोरायकी तरफ देखकर कहा—यह बड़ी कठिन बात है।

साधो बोला—बिरादरी मुझे जो प्रायश्चित्त बतलावेगी, मै उसे करूँगा। मुझसे जो कुछ बिरादरीका अपराध हुआ है, नादानीसे हुआ है। लेकिन मै उसका दण्ड भोगनेके लिए तैयार हूँ।

जगतसिंहने फिर जादोरायकी तरफ कनखियोंसे देखा और

गम्भीरतासे बोले—हिन्दू धर्ममें ऐसा कभी नहीं हुआ है। यों तुम्हारे माँ-बाप तुम्हे अपने घरमें रख ले, तुम उनके लड़के हो, मगर विरादरी कभी इस काममें शरीक न होगी। बोलो जादोराय—क्या कहते हो, कुछ तुम्हारे मनकी भी तो सुन लें।

जादोराय बड़ी दुविधामें था। एक ओर तो अपने प्यारे बेटेकी प्रीति थी, दूसरी ओर विरादरीका भय मारे डालता था। जिस लड़केके लिए रोते-रोते आँखे फूट गयी, आज वही सामने खडा आँखोंसे आँसू भरे कहता है, पिताजी! मुझे अपनी गोदमें लीजिये और मैं पत्थरकी तरह अचल खडा हूँ। शोक! इन निर्दयी भाइयोंको किस तरह समझाऊँ, क्या करूँ क्या न करूँ।

लेकिन माँकी ममता उमड़ आयी। देवकीसे न रहा गया। उसने अधीर होकर कहा—मै अपने लालको अपने घरमें रखूँगी और कलेजेसे लगाऊँगी। इतने दिनोंके बाद मैंने उसे पाया है, अब उसे नहीं छोड सकती।

जगतसिंह रुष्ट होकर बोले—चाहे विरादरी छूट ही क्यों न जाय?

देवकीने भी गरम होकर जवाब दिया—हाँ, चाहे विरादरी छूट ही जाय। लड़केवालोंहीके लिये आदमी विरादरीकी आड़ पकडता है। जब लडका ही न रहा तो भला विरादरी किस काम आवेगी।

इसपर कई ठाकुर लाल-लाल आँखें निकालकर बोले—ठकुराइन! विरादरीकी तो खूब मर्यादा करती हो। लड़का चाहे किसी रास्तेपर जाय, लेकिन विरादरी चूँतक न करे! ऐसी विरादरी कही और होगी? हम साफ साफ कहे देते हैं कि अगर

यह लड़का तुम्हारे घरमें रहा तो विरादरी भी बता देगी कि, वह क्या कर सकती है ?

जगतसिंह कभी-कभी जादोरायसे रुपये उधार लिया करते थे। मधुर स्वरसे बोले—भाभी! विरादरी यह थोड़े ही कहती है कि तुम लड़केको घरसे निकाल दो। लड़का इतने दिनोंके बाद घर आया है तो हमारे सिर आँखोंपर रहे। बस, जरा खाने-पीने और छूत-छातका बचाव बना रहना चाहिये। बोलो—जादो भाई! अब विरादरीको कहाँतक दबाना चाहते हो ?

जादोरायने साधोकी तरफ करुणाभरे नेत्रोंसे देखकर कहा—बेटा! जहाँ तुमने हमारे साथ इतना सलूक किया है वहाँ जगत भाईकी इतनी कही और मान लो ?

साधोने कुछ तीक्ष्ण शब्दोंमें कहा—क्या मान लूँ ? यह कि अपनोंमें गैर बनकर रहूँ, अपमान सहूँ; मिट्टीका घड़ा भी मेरे छूनेसे अशुद्ध हो जाय! न, यह मेरा किया न होगा, मैं इतना निर्लज्ज नहीं!

जादोरायको पुत्रकी यह कठोरता अप्रिय मालूम हुई। वे चाहते थे कि इस वक्त विरादरीके लोग जमा हैं, उनके सामने किसी तरह समझौता हो जाय फिर कौन देखता है कि हम उसे किस तरह रखते हैं ? चिढ़कर बोले—इतनी बात तो तुम्हें माननी ही पड़ेगी।

साधोराय इस रहस्यको न समझ सका। बापकी इस बातमें उसे निष्ठुरताकी झलक दिखायी पड़ी। बोला—मैं आपका लड़का हूँ। आपके लड़केकी तरह रहूँगा। आपके प्रेम और भक्तिकी प्रेरणा मुझे यहाँतक लायी है। मैं अपने घरमें रहने आया

हूँ । अगर यह नहीं है तो मेरे लिए इसके सिवा और कोई उपाय नहीं है कि जितना जल्दी हो सके यहाँसे भाग जाऊँ । जिनका

खून सफेद

है उनके बीचमें रहना व्यर्थ है ।

देवकीने रोकर कहा—लल्लू, मैं अब तुम्हें न जाने दूँगी । साधोकी आँखें भर आयीं, पर मुस्कराकर बोला—मैं तो तुम्हारी थालीमें खाऊँगा ।

देवकीने उसे ममता और प्रेमकी दृष्टिसे देखकर कहा—मैंने तो तुझे छातीसे दूध पिलाया है, तू मेरी थालीमें खायगा तो क्या ? मेरा बेटा ही तो है, कोई और तो नहीं हो गया !

साधो इन बातोंको सुनकर मतवाला हो गया । इनमें कितना स्नेह, कितना अपनापन था । बोला—माँ, आया तो मैं इसी इरादेसे था कि अब कहीं न जाऊँगा, लेकिन बिरादरीने मेरे कारण यदि तुम्हें जातिच्युत कर दिया तो मुझसे न सहा जायगा । मुझसे इन गँवारोंका कोरा अभिमान न देखा जायगा । इसलिए इस वक्त मुझे जाने दो । जब मुझे अवसर मिला करेगा तुम्हें देख जाया करूँगा । तुम्हारा प्रेम मेरे चित्तसे नहीं जा सकता । लेकिन यह असम्भव है कि मैं इस घरमें रहूँ और अलग खाना खाऊँ अलग बैठूँ । इसके लिये मुझे क्षमा करना ।

देवकी घरमेंसे पानी लायी । साधो मुँह धोने लगा । शिवगौरीने माँका इशारा पाया तो डरते-डरते साधोके पास गई, साधोको आदरपूर्वक दण्डवत की । साधोने पहिले उन दोनोंको आश्चर्यसे देखा, फिर अपनी माँको मुस्कराते देखकर समझ

गया। दोनो लडकोंको छातीसे लगा लिया और तीनों भाई बहिन प्रेमसे हँसने-खेलने लगे। माँ खड़ी यह दृश्य देखती थी और उमगसे फूली न समाती थी।

जलपान करके साधोने बाईसकिल सँभाली और माँ बापके सामने सिर झुकाकर चल खडा हुआ। वहीं, जहाँसे तंग होकर आया था। उसी क्षेत्रमें जहाँ अपना कोई न था! देवकी फूट-फूट कर रो रही थी और जादोराय आँखोंमें आँसू भरे, हृदयमें एक ऐंठन सी अनुभव करता हुआ सोचता था, हाय! मेरे लाल, तू मुझसे अलग हुआ जाता है। ऐसा योग्य और होनहार लड़का हाथसे निकला जाता है और केवल इसलिए कि अब हमारा खून सफेद हो गया है।

गरीबकी हाय—

[१]

मुन्शी रामसेवक भौंहे चढ़ाये हुए घरसे निकले और बोले—'इस जीनेसे तो मरना भला है' मृत्युको प्रायः इस तरहके जितने निमन्त्रण दिये जाते हैं, यदि वह सबको स्वीकार करती तो आज सारा ससार उजाड़ दिखाई देता।

मुंशी रामसेवक चाँदपुर गाँवके एक बड़े रईस थे। रईसोंके सभी गुण इनमें भरपूर थे। मानव चरित्रकी दुर्बलतायें उनके

जीवनका आधार थीं। वह नित्य मुन्सफी कचहरीके हातेमें एक नीमके पेडके नीचे कागजोंका बस्ता खोले एक टूटीसी चौकीपर बैठे दिखायी देते थे। किसीने कभी उन्हें किसी इजलासपर कानूनी बहस या मुकद्दमेकी पैरवी करते नही देखा। परन्तु उन्हें सब लोग मुख्तार साहब कहकर पुकारते थे। चाहे तूफान आवे, पानी बरसे, ओले गिरें, पर मुख्तार साहब वहाँसे टससे मस न होते। जब वह कचहरी चलते तो देहातियोंके झुंड के झुंड उनके साथ हो लेते। चारों ओरसे उनपर विश्वास और आदरकी दृष्टि पडती। सबमें प्रसिद्ध था कि उनकी जीभपर "सरस्वती" विराजती है। इसे वकालत कहो या मुख्तारी, परन्तु यह केवल कुल मर्यादाकी प्रतिष्ठाका पालन था। आमदनी अधिक न होती थी। चाँदीके सिक्कोंकी तो चर्चा ही क्या, कभी-कभी ताँबेके सिक्के भी निर्भय उनके पास आनेसे हिचकते थे। मुन्शीजीकी कानूनदानीमें कोई सन्देह न था। परन्तु "पास" के बखेडेने उन्हें विवश कर दिया था। खैर जो हो, उनका यह पेशा केवल प्रतिष्ठा-पालनके निमित्त था। नहीं तो उनके निर्वाहका मुख्य साधन आसपासकी अनाथ, पर खाने-पीनेमें सुखी विधवाओं और भोले भाले, किन्तु धनी, वृद्धोंकी श्रद्धा थी। विधवायें अपना रुपया उनके यहाँ अमानत रखती। बूढे अपने कपूतोंके डरसे अपना धन उन्हें सौप देते। पर रुपया एक बार उनकी मुट्ठीमे जाकर फिर निकलना भूल जाता था। वह जरूरत पडनेपर कभी-कभी कर्ज ले लेते थे। भला बिना कर्ज लिये किसीका काम चल सकता है? भोरको साँझके करारपर रुपया लेते, पर वह साँझ कभी नही आती थी। साराश, मुन्शीजी कर्ज लेकर देना सीखे नहीं थे।

यह उनकी कुलप्रथा थी। यही सब मामले बहुधा मुन्शीजीके सुख चैनमें विघ्न डालते थे। कानून और अदालत तो उन्हें कोई डर न था। इस मैदानमे उनका सामना करना पानीमें मगरसे लड़ना था। परन्तु जब कोई दुष्ट उससे भिड़ जाता, उनकी ईमानदारीपर सन्देह करता और उनके मुँहपर बुरा-भला कहनेपर उतारू हो जाता, तब मुन्शीजीके हृदयपर बडी चोट लगती। इस प्रकारकी दुर्घटनायें प्रायः होती रहती थी। हर जगह ऐसे ओछे लोग रहते हैं, जिन्हें दूसरोंको नीचा दिखानेमें ही आनन्द आता है। ऐसे ही लोगोंका सहारा पाकर कभी-कभी छोटे आदमी मुन्शीजीके मुँह लग जाते थे। नही तो, एक कुंजड़िन की इतनी मजाल नही थी कि आँगनमें जाकर उन्हें बुरा भला कहे। मुन्शीजी उसके पुराने गाहक थे, बरसोंतक उससे साग भाजी ली थी। यदि दाम न दिया जाय तो कुंजड़िनको सन्तोष करना चाहिये था। दाम जल्दी या देरसे मिल ही जाते। परन्तु वह मुँहफट कुंजड़िन दोही बरसोंमें घबरा गयी, और उसने कुछ आने पैसोंके लिये एक प्रतिष्ठित आदमीका पानी उतार लिया। झुँझलाकर मुन्शीजी अपनेको मृत्युका कलेवा बनानेपर उतारू हो गये तो इसमें उनका कुछ दोष न था।

[२]

इसी गाँवमें मूँगा नामकी एक विधवा ब्राह्मणी रहती थी। उसका पति ब्रह्माकी काली पल्टनमें हवलदार था और लड़ाईमें वहीं मारा गया। सरकारकी ओरसे उसके अच्छे कामोंके बदले मूँगाको पाँच सौ रुपये मिले थे। विधवा स्त्री, जमाना

नाजुक था, बेचारीने सब रुपये मुन्शी रामसेवकको सौंप दिये, और महीने-महीने थोड़ा-थोड़ा उसमेंसे माँगकर अपना निर्वाह करती रही।

मुन्शीजीने यह कर्त्तव्य कई वर्षतक तो बड़ी ईमानदारीके साथ पूरा किया। पर जब बूढी होनेपर भी मूँगा नही मरी और मुन्शीजीको यह चिन्ता हुई कि, शायद उसमेंसे आधी रकम भी स्वर्गयात्राके लिये नही छोड़ना चाहती, तो एक दिन उन्होंने कहा—"मूँगा! तुम्हें मरना है या नही? साफ साफ कह दो कि मैं ही अपने मरनेकी फिक्र करूँ।" उस दिन मूँगाकी आँखें खुलीं, उसकी नींद टूटी, बोली—मेरा हिसाब कर दो। हिसाबका चिट्ठा तैयार था। "अमानत" में अब एक कौड़ी बाकी न थी। मूँगाने बड़ी कडाईसे मुन्शीजीका हाथ पकड़ लिया और कहा—अभी मेरे ढाई सौ रुपये तुमने दबा रखे हैं। मैं एक कौड़ी भी न छोड़ूँगी।

परन्तु अनाथोंका क्रोध पटाखेकी आवाज है। जिससे बच्चे डर जाते हैं और असर कुछ नहीं होता। अदालतमे उसका कुछ जोर न था। न लिखा-पढ़ी थी, न हिसाब किताब। हाँ पञ्चायतसे कुछ आसरा था। पञ्चायत बैठी, कई गाँवके लोग इकट्ठे हुए। मुन्शीजी नीयत और मामलेके साफ थे, उन्हे पञ्चोंका क्या डर! सभामें खडे होकर पञ्चोंसे कहा—

भाइयो! आप सब लोग सत्यपरायण और कुलीन हैं, मैं आप सब साहबोंका दास हूँ, आप सब साहबोंकी उदारता और कृपासे, दया और प्रेमसे, मेरा रोम रोम कृतज्ञ है, और आप लोग सोचते हैं कि मै इस अनाथिनी और विधवा स्त्रीके रुपये हड़प कर गया हूँ?

पञ्चोंने एक स्वरसे कहा—नहीं, नहीं! आपसे ऐसा नहीं हो सकता।

रामसेवक—यदि आप सब सज्जनोंका विचार हो कि मैंने रुपये दबा लिये, तो मेरे लिये डूब मरनेके सिवा और कोई उपाय नही। मै धनाढ्य नही हूँ, न मुझे उदार होनेका घमण्ड है, पर अपनी कलमकी कृपासे, आप लोगोंकी कृपासे किसीका मुहताज नही हूँ। क्या मैं ऐसा ओछा हो जाऊँगा कि एक अनाथिनीके रुपये पचा लूँ?

पञ्चोंने एक स्वरसे फिर कहा—नहीं नही। आपसे ऐसा नही हो सकता।

मुँह देखकर टीका काढ़ा जाता है। पञ्चोंने मुन्शीजीको छोड दिया। पचायत उठ गयी। मूगाने आह भरकर सन्तोष किया और मनमें कहा—अच्छा, अच्छा! यहाँ न मिला तो न सही, वहाँ कहाँ जायगा।

[३]

अब कोई मूगाका दुःख सुननेवाला और सहायक न था। दरिद्रतासे जो कुछ दुःख भोगने पड़ते हैं वह सब उसे झेलने पड़े। वह शरीरसे पुष्ट थी, चाहती तो परिश्रम कर सकती थी, पर जिस दिन पंचायत पूरी हुई, उसी दिनसे उसने काम करनेकी कसम खा ली। अब उसे रात-दिन रुपयोंकी रट लगी रहती; उठते-बैठते, सोते-जागते, उसे केवल एक काम था और वह मुंशी रामसेवकका भला मनाना। अपने झोपड़ेके दरवाजेपर बैठी हुई रात-दिन, उन्हे सच्चे मनसे असीसा करती, बहुधा अपनी असीसके वाक्योंमें ऐसे कविताके वाक्य और उपमाओंके व्यव-

हार करती कि लोग सुनकर अचम्भेमें आ जाते। धीरे-धीरे मूँगा पगली हो चली। नगे सिर, नगे शरीर हाथमें एक कुल्हाड़ी लिये हुए सुनसान स्थानोंमे जा बैठती, झोपड़ेके बदले अब वह मरघट-पर, नदीके किनारे खण्डहरोंमें घूमती दिखाई देती। बिखरी हुई लटें, लाल लाल ऑखे, पागलों-सा चेहरा, सूखे हुए हाथ-पॉव। उसका यह स्वरूप देखकर लोग डर जाते थे। अब कोई उसे हॅसीमें भी नहीं छेड़ता। यदि वह कभी गॉवमें निकल आती तो स्त्रियॉ घरोंके किवाड़ बन्द कर लेती। पुरुष कतराकर इधर-उधर-से निकल जाते और बच्चे चीख मारकर भागते, यदि कोई लड़का भागता न था तो वह मुन्शी रामसेवकका सुपुत्र राम-गुलाम था। बापमें जो कुछ कोर-कसर रह गयी थी वह बेटेमें पूरी हो गयी थी। लड़कोंको उसके मारे नाकमे दम था। गॉवके काने और लगड़े आदमी उसकी सूरतसे चिढते थे और गालियॉ खानेमें तो शायद ससुरालमें आनेवाले दामादको भी इतना आनन्द न आता हो। वह मूॅगाके पीछे तालियॉ बजाता, कुत्तों-को साथ लिये हुए उस समयतक रहता, जबतक वह बेचारी तङ्ग आकर गॉवसे निकल न जाती। रुपया-पैसा, होश-हवास खोकर उसे पगलीकी पदवी मिली और अब वह सचमुच पगली थी। अकेली बैठी अपने आप घण्टों बाते किया करती। जिसमें रामसेवकके मास, हड्डी, चमड़े, ऑखे, कलेजा आदिको खाने, मसलने, नोचने, खसोटनेकी बड़ी उत्कट इच्छा प्रकट की जाती थी और जब उसकी यह इच्छा सीमातक पहुॅच जाती तो वह रामसेवकके घरकी ओर मुँह करके खूब चिल्लाकर और डरावने शब्दोंमें हॉक लगाती—तेरा लोहू पीऊॅगी।

प्रायः रातको सन्नाटेमें यह गर्जती हुई आवाज सुनकर स्त्रियाँ चौंक पड़ती थीं। परन्तु इस आवाजसे भयानक उसका ठठाकर हँसना था। मुन्शीजीके लहू पीनेकी कल्पित खुशीमें वह जोरसे हँसा करती थी। इस ठठानेसे ऐसी आसुरिक उद्दण्डता, ऐसी पाशविक उग्रता टपकती थी कि रातको सुनकर लोगोंका खून ठण्ढा हो जाता था। मालूम होता, मानों सैकड़ों उल्लू एक साथ हँस रहे हैं। मुन्शी रामसेवक बड़े हौसले और कलेजेके आदमी थे। न उन्हें दीवानीका डर था, न फौजदारीका। परन्तु मूँगाके इन डरावने शब्दोंको सुनकर वह भी सहम जाते। हमें मनुष्यके न्यायका डर न हो, परन्तु ईश्वरके न्यायका डर प्रत्येक मनुष्यके मनमें स्वभावसे रहता है? मूँगाका भयानक रातका घूमना, रामसेवकके मनमें कभी-कभी ऐसी ही भावना उत्पन्न कर देता। उनसे अधिक उनकी स्त्रीके मनमें। उनकी स्त्री बड़ी ही चतुर थी। वह इनको इन सब बातोंमें प्रायः सलाह दिया करती थी। उन लोगोंकी भूल थी, जो लोग कहते थे कि मुन्शीजीकी जीभपर सरस्वती विराजती हैं। यह गुण तो उनकी स्त्रीको प्राप्त थी। बोलनेमें वह इतनी ही तेज थी, जितना मुन्शीजी लिखनेमें थे और यह दोनों स्त्री-पुरुष प्रायः अपनी अवश दशामें सलाह करते कि अब क्या करना चाहिए।

[४]

आधी रातका समय था। मुन्शीजी नित्य नियमके अनुसार अपनी चिन्ता दूर करनेके लिये शराबके दो चार घूँट पीकर सो गये थे। यकायक मूँगाने उनके दरवाजेपर आकर जोरसे हाँक लगायी, 'तेरा लहू पीऊँगी' और खूब खिलखिलाकर हँसी।

मुन्शीजी यह भयावना ठहाका सुनकर चौंक पड़े। डरके मारे पैर थर थर काँपने लगे। कलेजा धक-धक करने लगा। दिलपर बहुत जोर डालकर उन्होंने दरवाजा खोला, जाकर नागिनको जगाया। नागिनने झुँझलाकर कहा—क्या है, क्या कहते हो?

मुन्शीजीने दबी आवाजसे कहा—वह दरवाजेपर खड़ी है।

नागिन उठ बैठी—क्या कहती है?

'तुम्हारा सिर।'

'क्या दरवाजेपर आ गयी?'

'हाँ, आवाज नहीं सुनती हो।'

नागिन मूँगासे नहीं, परन्तु उसके ध्यानसे बहुत डरती थी, तौ भी उसे विश्वास था कि मै बोलनेमें उसे जरूर नीचा दिखा सकती हूँ। सँभलकर बोली—'कहो तो मैं उससे दो-दो बातें कर लूँ।' परन्तु मुन्शीजीने मना किया।

दोनों आदमी पैर दबाये ड्योढ़ीमें गये और दरवाजेसे झाँक कर देखा, मूँगाकी धुँधली मूरत धरतीपर पड़ी थी और उसकी साँस तेजीसे चलती हुई सुनाई देती थी। रामसेवकके लहू और मासकी भूखमें वह अपना लहू और मास सुखा चुकी थी। एक बच्चा भी उसे गिरा सकता था। परन्तु उससे सारा गाँव थर-थर काँपता। हम जीते मनुष्यसे नहीं डरते, पर मुर्देसे डरते हैं। रात गुजरी। दरवाजा बन्द था, पर मुन्शीजी और नागिनने बैठकर रात काटी। मूँगा भीतर नहीं घुस सकती थी, पर उसकी आवाजको कौन रोक सकता था, मूँगासे अधिक डरावनी उसकी आवाज थी।

भोरको मुन्शीजी बाहर निकले और मूँगासे बोले—यहाँ क्यों पड़ी है ?

मूँगा बोली—तेरा लहू पीऊँगी।

नागिनने बल खाकर कहा—तेरा मुँह झुलस दूँगी।

पर नागिनके विषने मूँगापर कुछ असर न किया। उसने जोरसे ठहाका लगाया, नागिन खिसियानीसी हो गयी। हँसीके सामने मुँह बन्द हो जाता है। मुन्शीजी फिर बोले—यहासे उठ जा।

'न उठूँगी।'

'कबतक पड़ी रहेगी ?'

'तेरा लहू पीकर जाऊँगी।'

मुन्शीजीका प्रखर लेखनीका यहाँ कुछ जोर न चला और नागिनकी आगभरी बाते यहाँ सर्द हो गयीं। दोनों घरमें जाकर सलाह करने लगे, यह बला कैसे टलेगी। इस आपत्तिसे कैसे छुटकारा होगा।

देवी आती है तो बकरेका खून पीकर चली जाती है, पर यह डाइन मनुष्यका खून पीने आयी है। वह खून, जिसकी अगर एक बून्द भी कलम बनानेके समय निकल पड़ती थी, तो अठवारों और महीनों सारे कुनबेके अफसोस रहता और यह घटना गाँवमे घर-घर फैल जाती थी। क्या यही लहू पीकर मूँगाका सूखा शरीर हरा हो जायगा ?

गाँवमे यह चर्चा फैल गयी, मूँगा मुन्शीजीके दरवाजेपर धरना दिये बैठी है। मुन्शीजीके अपमानमें गाँववालोंको बड़ा मजा आता था। देखते-देखते सैकड़ों आदमियोंकी भीड़ लग गयी। इस

दरवाजेपर कभी-कभी भीड़ लगी रहती थी। यह भीड रामगुलाम को पसन्द न थी। मूँगापर उसे ऐसा क्रोध आ रहा था कि यदि उसका वश चलता तो वह इसे कुएँ मे ढकेल देता। इस तरह-का विचार उठते ही रामगुलामके मनमे गुदगुदी समा गयी और वह बड़ी कठिनतासे अपनी हँसी रोक सका। अहा! वह कुएँमें गिरती तो क्या मजेकी बात होती! परन्तु यह चुंडैल यहाँसे टलती ही नहीं, क्या करूँ। मुन्शीजीके घरमे एक गाय थी, जिसे खली दाना और भूसा तो खूब खिलाया जाता, पर वह सब उसकी हड्डियोंमे मिल जाता, उसका ढॉचा पुष्ट होता जाता था। रामगुलामने उसी गायका गोबर एक हॉड़ीमे घोला और सबका सब बेचारी मूँगापर उडेल दिया। उसके थोड़े बहुत छीटे दर्शकों-पर भी डाल दिये। बेचारी मूँगा लदफद हो गयी और लोग भाग खड़े हुए। कहने लगे यह मुन्शी रामगुलामका दरवाजा है। यहॉ इसी प्रकारका शिष्टाचार किया जाता है। जल्द भाग चलो। नहीं तो अबके इससे भी बढ़कर खातिर की जायगी। इधर भीड़ कम हुई, उधर रामगुलाम घरमे जाकर खूब हँसा और खूब तालियॉ बजाई। मुन्शीजीने व्यर्थकी भीड़को ऐसे सहजमें और ऐसे सुन्दर रूपसे हटा देनेके उपायपर अपने सुशील लड़केको पीठ ठोंकी। सब लोग तो चम्पत हो गये, पर बेचारी मूँगा ज्योंकी त्यों बैठी रह गयी।

दोपहर हुई। मूँगाने कुछ नहीं खाया। सॉझ हुई। हजार कहने सुननेसे भी खाना नही खाया। गॉवके चौधरीने बड़ी खुशामद की। यहॉ तक कि, मुन्शीजीने हाथतक जोडे पर देवी प्रसन्न न हुई। निदान मुन्शीजी उठकर भीतर चले गये। वह

कहते थे कि रूठनेवालेको भूख आप ही मना लिया करती है। मूँगाने यह रात भी बिना दाना पानीके काट दी! लालाजी और ललाइनने आज फिर जाग-जागकर भोर किया। आज मूँगाकी गरज और हँसी बहुत कम सुनाई पडती थी। घरवालोंने समझा बला टली। सवेरा होते ही जो दरवाजा खोलकर देखा, तो वह अचेत पड़ी थी, मुँहपर मक्खियाँ भिन भिना रही हैं और उसके प्रान-पखेरू उड़ चुके हैं। वह इस दरवाजेपर मरने ही आयी थी। जिसने उसके जीवनकी जमा पूँजी हर ली थी उसीको अपनी जान भी सौंप दी। अपने शरीरको मिट्टीतक उसकी भेंट कर दी। धनसे मनुष्यको कितना प्रेम होता है। धन अपनी जानसे भी ज्यादा प्यारा होता है। विशेषकर बुढ़ापेमें। ऋण चुकानेके दिन ज्यों-ज्यों पास आते जाते हैं, त्यों त्यों उसका ब्याज बढ़ता जाता है।

यह कहना यहाँ व्यर्थ है कि गाँवमें इस घटनासे कैसी हलचल मची और मुन्शी रामसेवक कैसे अपमानित हुए। एक छोटेसे गाँवमे ऐसी असाधारण घटना होनेपर जितनी हलचल हो सकती उससे अधिक ही हुई। मुन्शीजीका अपमान जितना होना चाहिये था, उससे बाल बराबर भी कम न हुआ। उनका बचा खुचा पानी भी इस घटनासे चला गया। अब गाँवका चमार भी उनके हाथका पानी पीनेका, उन्हें छूनेका रवादार न था। यदि किसी घरमें कोई गाय खूँटेपर मर जाती है तो वह आदमी महीनों द्वार-द्वार भीख माँगता फिरता है। न नाई उसकी हजामत बनावे, न कहार उसका पानी भरे, न कोई उसे छूए। यह गोहत्याका प्रायश्चित्त था। ब्रह्महत्याका दण्ड तो इससे भी कड़ा है और

इसमें अपमान भी बहुत है। मूँगा यह जानती थी और इसीलिये इस दरवाजेपर आकर मरी थी। वह जानती थो कि मै जीते जी तो कुछ नही कर सकती, मरकर उससे बहुत कुछ कर सकती हूँ। गोबरका उपला जब जलकर खाक हो जाता है तब साधु सन्त उसे माथेपर चढ़ाते हैं, पत्थरका ढेला आगमें जलकर आगसे अधिक तीखा और मारक होता है।

[५]

मुन्शी रामसेवक कानूनदाँ थे। कानूनने उनपर कोई दोष नही लगाया था। मूँगा किसी कानूनी दफाके अनुसार नहीं मरी थी। ताजिरात हिन्दमें उसका कोई उदाहरण नही मिलता था। इसलिये जो लोग उनसे प्रायश्चित्त करवाना चाहते थे उनकी भारी भूल थी। कुछ हर्ज नही कहार पानी न भरे, न सही। वह आप पानी भर लेंगे। अपना काम आप करनेमे भला लाज ही क्या? बलासे नाई बाल न बनावेगा। हजामत बनानेका काम ही क्या है, दाढ़ी बहुत सुन्दर वस्तु है। दाढी मर्दकी शोभा और सिङ्गार है और जो फिर बालोंसे ऐसी घिन होगी तो एक-एक आनेमें तो अस्तुरे मिलते हैं। धोबी कपड़े न धोवेगा इसकी भी कुछ परवाह नहीं। साबुन तो गली गली कौड़ियोंके मोल आती है। एक बट्टी साबुनमें दरजनों कपड़े ऐसे साफ हो जाते हैं जैसे बगुलेके पर। धोबी क्या खाकर ऐसा साफ कपड़ा धोवेगा? पत्थरपर पटक पटककर कपड़ोंका लत्ता निकाल लेता है। आप आप पहने, दूसरोंको भाड़ेपर पहनावे, भट्ठीमें चढ़ाके, रेहमें भिगावे; कपड़ोंकी तो दुर्गति कर डालता है। जभी तो कुरते दो तीन सालमे अधिक नहीं चलते। नहीं तो दादा हर पाँचवें बरस दो

तीन अचकन और दो कुरते बनवाया करते थे। मुन्शी रामसेवक और उनकी स्त्रीने दिन भर तो यों ही कहकर अपने मनको समझाया। साँझ होते ही उनकी तर्कनाएँ शिथिल हो गयीं।

अब उनके मनपर भयने चढाई की। जैसे तैसे रात बीतती थी भय भी बढ़ता जाता था। बाहरका दरवाजा भूलसे खुला रह गया था, पर किसीकी हिम्मत न पडती थी कि जाकर बन्द तो कर आवे। निदान नागिनने हाथमें दीया लिया। मुन्शीजीने कुल्हाड़ा, रामगुलामने गड़ासा, इस ढंगसे तीनों आदमी चौकते हिचकते दरवाजेपर आये, यहाँ मुन्शीजीने बडी बहादुरीसे काम लिया। उन्होने निधडक दरवाजेसे बाहर निकलनेकी कोशिश की। काँपते हुए, पर ऊँची आवाजसे नागिनसे बोले—"तुम व्यर्थ डरती हो, वह क्या यहाँ बैठी है?" पर उनकी प्यारी नागिनने उन्हे अन्दर खींच लिया और झुझलाकर बोली—तुम्हारा यही लड़कपन तो अच्छा नही। यह दगल जीतकर तीनों आदमी रसोईके कमरेमे आये और खाना पकने लगा।

परन्तु मूँगा उनकी आँखोंमें घुसी हुई थी। अपनी परछाईको देखकर मूँगाका भय होता था। अन्धेरे कोनेमें मूँगा बैठी मालूम होती थी। वही हड्डियोंका ढाँचा, वही बिखरे हुए बाल, वही पागलपन, वही डरावनी आँखे, मूँगाका नखसिख दिखायी देता था। इसी कोठरीमें आटे दालके कई मटके रखे हुए थे, वही कुछ पुराने चिथडे भी पडे हुए थे। एक चूहेको भूखने बेचैन किया (मटकोंने कभी अनाजकी सूरत नही देखी थी, पर सारे गाँवमें मशहूर था कि इस घरके चूहे गजबके डाकू हैं) तो वह उन दानोंकी खोजमे जो मटकोंसे कभी नहीं गिरे थे, रेंगता हुआ

भीतरसे उनके कानोंमें आती थी—'तेरा लहू पीऊँगी।'

आधी रातको नागिन नींदसे चौक पड़ी। वह इन दिनों गर्भवती थी। लाल लाल आँखोंवाली तेज और नोकीले दातों-वाली मूँगा उसकी छातीपर बैठी हुई जान पडती थी। नागिन चीख उठी। बावलीकी तरह आँगनमें भाग आयी और यकायक धरतीपर चित्त गिर पडी। सारा शरीर पसीने-पसीने हो गया। मुन्शीजी भी उसकी चीख सुनकर चौके, पर डरके मारे आँखे न खुली। अन्धोंकी तरह दरवाजा टटोलते रहे। बहुत देरके बाद उन्हे दरवाजा मिला। आँगनमे आये। नागिन जमीनपर पड़ी हाथ पाँव पटक रही थी। उसे उठाकर भीतर लाये, पर रातभर उसने आँखें न खोली। भोरको अकबक बकने लगी। थोड़ी देरमे ज्वर हो आया। बदन लाल तवा सा हो गया। साझ होते होते उसे सन्निपात हो आया और आधी रातके समय जब संसारमें सन्नाटा छाया हुआ था, नागिन इस संसारसे चल बसी। मूँगाके डरने उसकी जान ली। जबतक मूँगा जीती रही, वह नागिनकी फुफकारसे सदा डरती रही। पगली होनेपर भी उसने कभी नागिनका सामना नहीं किया, पर अपनी जान देकर उसने आज नागिनकी जान ली। भयमें बड़ी शक्ति है। मनुष्य हवामें एक गिरह भी नही लगा सकता, पर इसने हवामें एक संसार रच डाला।

रात बीत गयी। दिन चढता आता था, पर गाँवका कोई आदमी नागिनकी लाश उठानेको आता न दिखायी दिया। मुन्शीजी घर घर-घूमे पर कोई न निकला। भला हत्यारेके दर-वाजेपर कौन जाय? हत्यारेकी लाश कौन उठावे? इस समय

मुन्शीजीका रोबदाब, उनकी प्रबल लेखनीका भय और उनकी कानूनी प्रतिभा एक भी काम न आयी। चारों ओरसे हारकर मुन्शीजी फिर अपने घर आये। यहाँ उन्हें अन्धकार ही अन्धकार दीखता था, दरवाजे तक तो आये, पर भीतर पैर नही रखा जाता था। न बाहर ही खडे रह सकते थे। बाहर मूँगा थी भीतर नागिन, जीको कडा करके 'हनुमान चालीसा' का पाठ करते हुए घरमे घुसे। उस समय उनके मनपर जो बीतती थी वही जानते थे। उसका अनुमान करना कठिन है। घरमें लाश पडी हुई, न कोई आगे न पीछे। दूसरा व्याह तो हो सकता था। अभी इसी फागुनमें तो पचासवाँ लगा है। पर ऐसी सुयोग्य और मीठी बोलीवाली स्त्री कहाँ मिलेगी? अफसोस! अब तगादा करनेवालोंसे बहस कौन करेगा, कौन उन्हें निरुत्तर करेगा? लेनदेनका हिसाब किताब कौन इतनी खूबीसे करेगा? किसकी कडी आवाज तीरकी तरह तगादेदारोंकी छातीमें चुभेगी? यह नुकसान अब पूरा नही हो सकता। दूसरे दिन मुन्शीजी लाशको एक ठेले गाड़ीपर लादकर गङ्गाजीकी तरफ चले।

[६]

शवके साथ जानेवालोंकी सख्या कुछ भी न थी। एक स्वयं मुन्शीजी, दूसरे उनके पुत्ररत्न रामगुलामजी! इस बेइज्जतीसे मूँगा की लाश भी नहीं उठी थी।

मूँगाने नागिनकी जान लेकर भी मुन्शीजीका पिण्ड न छोड़ा। उनके मनमें हर घड़ी मूँगाकी मूर्त्ति विराजमान रहती

थी। कही रहते उनका ध्यान इसी ओर रहा करता था। यदि दिल बहलावका कोई उपाय होता तो शायद वह इतने बेचैन न होते, पर गाँवका एक पुतला भी उनके दरवाजेकी ओर न झाँकता था। बेचारे अपने हाथों पानी भरते, आपही बरतन धोते। सोच और क्रोध, चिन्ता और भय, इतने शत्रुओंके सामने एक दिमाग कबतक ठहर सकता। विशेषकर वह दिमाग जो रोज रोज कानूनकी बहसोंमें खर्च हो जाता था।

अकेले कैदीकी तरह उनके दस-बारह दिन तो ज्यों त्योंकर कटे। चौदहवें दिन मुन्शीजीने कपड़े बदले और बोरियाबस्ता लिए हुए कचहरी चले। आज उनका चेहरा कुछ खिला हुआ था। जाते ही मेरे मुअक्किल मुझे घेर लेंगे। मेरी मातमपुर्सी करेंगे। मैं आँसुओंकी दो चार बूँदें गिरा दूँगा। फिर बैनामों रेहननामो और सुलहनामोंकी भरमार हो जायगी। मुट्ठी गरम होगी। शामको जरा नशे-पानीका रंग जम जायगा, जिसके छूट जानेसे जी और भी उचाट हो रहा था। इन्ही विचारोंमें मग्न मुन्शीजी कचहरी पहुँचे।

पर वहाँ रेहननामोंकी भरमार और बैनामोंकी बाढ़ और मुअक्किलोंकी चहल पहलके बदले निराशाकी रेतीली भूमि नजर आयी। बस्ता खोले घण्टों बैठे रहे, पर कोई नजदीक भी न आया। किसीने इतना भी न पूछा कि आप कैसे हैं! नए मुअक्किल तो खैर, बड़े बड़े पुराने मुअक्किल जिनका मुन्शीजीसे कई पीढ़ियोंसे सरोकार था, आज उनसे मुँह छिपाने लगे। वह नालायक और अनाड़ी रमजान जिसकी मुन्शीजी हँसी उड़ाते थे और जिसे शुद्ध लिखना भी न आता था, गोपियोंमें कन्हैया बना

हुआ था। वाहरे भाग्य! मुअक्किल यों मुँह फेरे चले जाते हैं मानो कभीकी जान पहचान ही नहीं। दिनभर कचहरीकी खाक छाननेके बाद मुन्शीजी अपने घर चले। निराशा और चिन्तामें डूबे हुए ज्यों-ज्यों घरके निकट आते थे, मूँगाका चित्र सामने आता जाता था। यहाँतक कि जब घरका द्वार खोला और दो कुत्ते जिन्हे रामगुलामने बन्द कर रखा था झटपट बाहर निकले तो मुन्शीजीके होश उड़ गये, एक चीख मारकर जमीनपर गिर पड़े।

मनुष्यके मन और मस्तिष्कपर भयका जितना प्रभाव होता है, उतना और किसी शक्तिका नहीं। प्रेम, चिन्ता, निराशा, हानि यह सब मनको अवश्य दुःखित करते हैं, यह हवाके हलके झोंके हैं और भय प्रचण्ड आँधी है। मुन्शीजीपर इसके बाद क्या बीती मालूम नहीं, कई दिनोंतक लोगोंने उन्हें कचहरी जाते और वहाँसे मुरझाये हुए लौटते देखा। कचहरी जाना उनका कर्त्तव्य था और यद्यपि वहाँ मुअक्किलोंका अकाल था, तौभी तगादेवालोंमे गला छुडाने और उनको भरोसा दिलानेके लिये अब यही एक लटका रह गया था। इसके बाद वह कई महीनेतक देख न पड़े। बद्रीनाथ चले गये। एक दिन गाँवमे एक साधू आया, भभूत रमाये लम्बी-लम्बी जटायें, हाथमें कमण्डल, उसका चेहरा मुन्शी रामसेवकसे बहुत मिलता जुलता था। बोलचालमें भी अधिक भेद न था। वह एक पेड़के नीचे धूनी रमाये बैठ रहा। उसी रातको मुन्शीजी रामसेवकके घरसे धूँआँ उठा, फिर आगकी ज्वाला दीखने लगी और आग भभक उठी। गाँवके सैकड़ों आदमी दौड़े, आग बुझानेके लिये नहीं, तमाशा देखनेके लिये। एक

गरीबकी हाय

में कितना प्रभाव है! रामगुलाम मुन्शीजीके गायब हो जानेपर अपने मामाके यहाँ चला गया और वहाँ कुछ दिनों रहा, पर वहाँ उसकी चाल ढाल किसीको पसन्द न आयी।

एक दिन उसने किसीके खेतमे मूली नोची। उसने दो-चार धौल लगाये। उसपर वह इस तरह बिगड़ा कि जब उसके चने खलिहानमें आये तो उसने आग लगा दी। सारा का-सारा खलिहान जलकर खाक हो गया। हजारों रुपयोंका नुकसान हुआ। पुलिसने तहकीकात की, रामगुलाम पकड़ा गया। इसी अपराधमें वह चुनारके रिफार्मेन्टरी स्कूलमें मौजूद है।

दो भाई—

[१]

प्रातःकाल सूर्यकी सुहावनी सुनहरी धूपमे कलावती दोनों बेटोंको जाघोंपर बैठा दूध और रोटी खिलाती थी। केदार बड़ा था, माधव छोटा। दोनों मुँहमें कौर लिये, कई पग उछल कूदकर फिर जाघोंपर आ बैठते और अपनी तोतली बोलीमें इस प्रार्थनाकी रट लगाते थे जिसमें एक पुराने सहृदय कविने किसी जाड़ेके सताये हुए बालकक हृदयोद्गारको प्रगट किया है।

"दैव दैव घाम करो तुम्हरे बालकको लगता जाड़"

माँ उन्हें चुमकारकर बुलाती और बड़े-बड़े कौर खिलाती। उसके हृदयमें प्रेमकी उमंग थी और नेत्रोंमे गर्वकी झलक। दोनों भाई बड़े हुए। साथ-साथ गलेमें बाहे डाले खेलते थे। केदारकी बुद्धि चुस्त थी। माधवका शरीर। दोनोंमें इतना स्नेह था कि साथ साथ पाठशाला जाते, साथ-साथ खाते और साथ-ही साथ रहते थे। दोनों भाइयोंका व्याह हुआ। केदारकी बहू चम्पा अमितभाषिणी और चचला थी। माधवकी बधू श्यामा सावली सलोनी, रूपराशिकी खानि थी। बड़ीही मृदुभाषिणी, बडीही सुशीला और शान्तस्वभावा थी।

केदार चम्पा पर मोहे और माधव श्यामापर रीझे। परन्तु कलावतीका मन किसीसे न मिला। वह दोनोंसे प्रसन्न और दोनोंसे अप्रसन्न थी। उसकी शिक्षादीक्षाका बहुत अंश इस व्यर्थके प्रयत्नमें व्यय होता था कि चम्पा अपनी कार्यकुशलताका एक भाग श्यामाके शान्तस्वभावसे बदल ले।

दोनों भाई सन्तानवान हुए। हरा भरा वृक्ष खूब फैला और फलोंसे लद गया। कुत्सित वृक्षमें केवल एक फल दृष्टिगोचर हुआ, वह भी कुछ पीलासा मुरझाया हुआ। किन्तु दोनों अप्रसन्न थे। माधवको धन सम्पत्तिकी लालसा थी और केदारको सन्तानकी अभिलाषा।

भाग्यकी इस कूटनीतिने शनैःशनैः द्वेषका रूप धारण किया, जो स्वाभाविक था। श्यामा अपने लड़कोको सवारने सुधारनेमें लगी रहती; उसे सिर उठानेकी फ़ुरसत नहीं मिलती थी। बेचारी चम्पाको चूल्हेमें जलना और चक्कीमें पीसना पड़ता। यह अनीति

कभी-कभी कटु शब्दोंमें निकल जाती। श्यामा सुनती, कुढ़ती और चुपचाप सह लेती। परन्तु उसकी यह सहनशीलता चम्पाके क्रोधको शान्त करनेके बदले और बढ़ाती। यहाँ तक कि प्याला लबालब भर गया। हिरन भागनेको राह न पाकर शिकारीकी तरफ लपका। चम्पा और श्यामा समकोण बनानेवाली रेखाओंकी भाति अलग हो गयी। उस दिन एक ही घरमे दो चूल्हे जले, परन्तु भाइयोंने दानेकी सूरत न देखा और कलावती सारे दिन रोती रही।

[२]

कई वर्ष बीत गये। दोनो भाई जो किसी समय एक ही पालथीपर बैठते थे, एक ही थालीमें खाते थे और एक ही छातीसे दूध पीते थे, उन्हे अब एक घरमे, एक गावमें रहना कठिन हो गया। परन्तु कुलकी साखमें बट्टा न लगे, इसलिये ईर्ष्या और द्वेषकी धधकी हुई आगको राखके नीचे दबानेकी व्यर्थ चेष्टा की जाती थी। उन लोगोंमें अब भ्रातृ स्नेह न था। केवल भाईके नामकी लाज थी। मा अब भी जीवित थी, पर दोनों बेटोका वैमनस्य देखकर आँसू बहाया करती। हृदयमे प्रेम था, पर नेत्रोंमे अभिमान न था। कुसुम वही था, परन्तु वह छटा न थी।

दोनों भाई जब लड़के थे, तब एकको रोते देख दूसरा भी रोने लगता था, तब वह नादान, बेसमझ और भोले थे। आज एकको रोते हुए देख दूसरा हँसता और तालियाँ बजाता। अब वह समझदार और बुद्धिमान हो गये थे।

जब उन्हे अपने परायेकी पहचान न थी, उस समय यदि

कोई छेड़नेके लिये एकको अपने साथ ले जानेकी धमकी देता तो दूसरा जमीनपर लोट जाता और उस आदमीका कुर्ता पकड़ लेता। अब यदि एक भाईको मृत्यु भी धमकाती तो दूसरेके नेत्रोंमें आँसू न आते। अब उन्हे अपने परायेकी पहचान हो गयी थी।

बेचारे माधवकी दशा शोचनीय थी। खर्च अधिक था और आमदनी कम। उसपर कुल मर्यादाका निर्वाह। हृदय चाहे रोये, पर होंठ हँसते रहे। हृदय चाहे मलीन हो, पर कपड़े मैले न हों। चार पुत्र थे, चार पुत्रियाँ, और आवश्यक वस्तुयें मोतियोंके मोल। कुछ पाइयोंकी जमीदारी कहाँतक सम्हालती। लड़कोंका व्याह अपने वशकी बात थी, पर लड़कियोंका विवाह कैसे टल सकता था। दो पाई जमीन पहली कन्याके विवाहकी भेंट हो गयी। उसपर भी बराती बिना भात खाये आँगनसे उठ गये। शेष दूसरी कन्याके विवाहमे निकल गयी। सालभर बाद तीसरी लड़कीका विवाह हुआ, पेड़ पत्ते भी न बचे। हाँ, अबकी डाल भरपूर थी। परन्तु दरिद्रता और धरोहरमें वही सम्बन्ध है जो मास और कुत्ते मे।

[३]

इस कन्याका अभी गौना न हुआ था कि माधवपर दो सालके बकाया लगानका वारण्ट आ पहुँचा। कन्याके गहने गिरो (बन्दक) रख गये। गला छूटा। चम्पा इसी समयकी ताकमें थी। तुरत नये-नये नातेदारोंको सूचना दी, तुम लोग बेसुध बैठे हो, यहाँ गहनोंका सफाया हुआ जाता है। दूसरे दिन एक

नाई और दो ब्राह्मण माधवके दरवाजेपर आकर बैठ गये। बेचारेके गलेमें फाँसी पड़ गयी। रुपये कहाँसे आवें, न जमीन न जायदाद, न बाग न बगीचा। रहा विश्वास, वह कभीका उठ चुका था; अब यदि कोई सम्पत्ति थी तो केवल वही दो कोठरियाँ, जिनमें उसने अपनी सारी आयु बितायी थी, और उनका कोई ग्राहक न था। विलम्बसे नाक कटी जाती थी। विवश होकर केदारके पास आया और आँखोंमें आँसू भरे बोला—भैया, इस समय मैं बड़े सङ्कटमें हूँ, मेरी सहायता करो।

केदारने उत्तर दिया—मद्धू! आजकल मैं भी तङ्ग हो रहा हूँ, तुमसे सच कहता हूँ।

चम्पा अधिकारपूर्ण स्वरसे बोली—अरे, तो क्या इनके लिये भी तंग हो रहे हैं? अलग भोजन करनेसे क्या इज्जत अलग हो जायगी?

केदारने स्त्रीकी ओर कनखियोंसे ताककर कहा—नहीं नहीं, मेरा यह प्रयोजन नहीं था। हाथ तंग है तो क्या कोई न कोई प्रबन्ध किया ही जायगा।

चम्पाने माधवसे पूछा—पाँच बीससे कुछ ऊपर ही पर गहने रखे थे न?

माधवने उत्तर दिया—हाँ! ब्याज सहित कोई सवा सौ रुपये होते हैं।

केदार रामायण पढ़ रहे थे। फिर पढ़नेमें लग गये। चम्पाने तत्वकी बातचीत शुरू की—रुपया बहुत है, हमारे पास होता तो कोई बात न थी। परन्तु हमें भी दूसरेसे दिलाना पड़ेगा और महाजन बिना कुछ लिखाये-पढ़ाये रुपया देते नहीं।

माधवने सोचा यदि मेरे पास कुछ लिखाने-पढ़ानेको होता तो क्या और महाजन मर गये थे, तुम्हारे दरवाजे आता क्यों? बोला—लिखने-पढ़नेको मेरे पास है ही क्या? जो कुछ जगह जायदाद है वह यही घर है।

केदार और चम्पाने एक दूसरेको मर्मभेदी नयनोंसे देखा और मन-ही-मन कहा—क्या आज सचमुच जीवनकी प्यारी अभिलाषाएँ पूरी होंगी? परन्तु हृदयकी यह उमंग मुँहतक आते-आते गम्भीर रूप धारण कर गयी। चम्पा बड़ी गम्भीरतासे बोली--घरपर तो कोई महाजन कदाचित ही रुपया दे। शहर हो तो कुछ किराया ही आवे, पर गँवईमें तो कोई सेतमें रहने-वाला भी नहीं। फिर साझेकी चीज ठहरी।

केदार डरे कि कहीं चम्पाकी कठोरतासे खेल बिगड़ न जाय। बोले—एक महाजनसे मेरा जान पहिचान है, वह कदा-चित कहने-सुननेमें आ जाय।

चम्पाने गर्दन हिलाकर इस युक्तिकी सराहना की और बोली—पर दो-तीन बीससे अधिक मिलना कठिन है।

केदारने जानपर खेलकर कहा—अरे बहुत दबानेसे चार बीस हो जायँगे और क्या।

अबकी चम्पाने तीव्र दृष्टिसे केदारको देखा और अनमनीसी होकर बोली—महाजन ऐसे अन्धे नहीं होते।

माधव अपने भाई भावजके इस गुप्त रहस्यको कुछ-कुछ समझता था। वह चकित था कि इन्हें इतनी बुद्धि कहाँसे मिल गई। बोला—और रुपये कहाँसे आवेंगे?

चम्पा चिढ़कर बोली—और रुपयोंके लिये और फिक्र करो!

सवा सौ रुपये इन दो कोठरियोंके इस जन्ममे कोई न देगा, चार बीस चाहो तो एक महाजनसे दिला दूँ, लिखा पढ़ी कर लो।

माधव इन रहस्यमय बातोंसे सशक हो गया। उसे भय हुआ कि यह लोग मेरे साथ कोई गहरी चाल चल रहे हैं। दृढ़ताके साथ अड़कर बोला—और कौन-सी फिक्र करूँ? गहने होते तो कहता लाओ रख दूँ। यहाँ तो कच्चा सूत भी नहीं है। जब बदनाम हुए तो क्या दसके लिये, क्या पचासके लिये दोनों एक ही बात है। यदि घर बेचकर मेरा नाम रह जाय तो यहाँतक तो स्वीकार है, परन्तु घर भी बेचूँ और उसपर भी प्रतिष्ठा धूलमे मिले, ऐसा मै न करूँगा। केवल नामका ध्यान है, नही एकबार नही कर जाऊँ तो मेरा कोई क्या करेगा? और सच पूछो तो मुझे अपने नामकी कोई चिन्ता नही है। मुझे कौन जानता है। ससार तो भैयाको हँसेगा।

केदारका मुँह सूख गया। चम्पा भी चकरा गयी। वह बड़ी चतुर वाक्यनिपुण रमणी थी। उसे माधव जैसे गँवारसे ऐसी दृढताकी आशा न थी। उसकी ओर आदरसे देखकर बोली—लालू, कभी-कभी तुम भी लडकोंकीसी बाते करते हो। भला इस झोपड़ीपर कौन सौ रुपये निकालकर देगा? तुम सवा सौके बदले सौ ही दिलाओ, मै आज ही अपना हिस्सा बेचती हूँ। उतना ही मेरा भी तो है। घरपर तो तुमको वही चार बीस मिलेंगे। हाँ, और रुपयोंका प्रबन्ध हम और आप कर देगे। इज्जत हमारी तुम्हारी एक ही है, वह न जाने पायेगी। वह रुपया अलग खाते में चढ़ा लिया जायगा।

माधवकी वाञ्छायें पूरी हुई। उसने मैदान मार लिया।

सोचने लगा, मुझे तो रुपयोंसे काम है, चाहे एक नही दस खाते में चढ़ा लो। रहा मकान, वह जीते जी नहीं छोड़नेका। प्रसन्न होकर चला। इसके जानेके बाद केदार और चम्पाने कपट भेष त्याग दिया और बड़ी देरतक एक दूसरेको इस कड़े सौदेका दोषी सिद्ध करनेकी चेष्टा करते रहे। अन्तमें मनको इस तरह सन्तोष दिया कि भोजन बहुत मधुर नही, किन्तु भर कठौत तो है। घर, हा देखेंगे कि श्यामा रानी इस घरमें कैसे राज करती हैं।

केदारके दरवाजेपर दो बैल खड़े हैं। इनमें कितनी सघशक्ति, कितनी मित्रता और कितना प्रेम है। दोनों एकही जुयेमे चलते हैं, बस इनमें इतना ही नाता है। किन्तु अभी कुछ दिन हुए जब इनमेंसे एक चम्पाके मैके मँगनो गया था तो दूसरेने तीन दिनतक नादमें मुँह नही डाला। परन्तु शोक, एक गोदके खेले भाई, एक छातीसे दूध पीनेवाले आज इतने बेगाने हो रहे हैं कि एक घरमें रहना भी नही चाहते।

[४]

प्रातःकाल था। केदारके द्वारपर गाँवके मुखिया और नंबरदार विराजमान थे। मुन्शी दातादयाल अभिमानसे चारपाईपर बैठे रेहनका मसविदा तैयार करनेमें लगे थे। बारम्बार कलम बनाते और बारम्बार खत रखते, पर खतकी शान न सुधरती थी। केदारका मुखारविन्द विकसित था और चम्पा फूली नही समाती थी। माधव कुम्हलाया और म्लान था।

मुखियाने कहा—भाई ऐसा हित, न भाई ऐसा शत्रु। केदारने छोटे भाईकी लाज रख ली।

नम्बरदारने अनुमोदन किया—भाई हो तो ऐसा हो।

मुख्तारने कहा—भाई, सपूतोंका यही काम है।

दाखादयालने पूछा—रेहन लिखनेवालेका नाम?

बड़े भाई बोले—माधव वल्द शिवदत्त।

'और लिखानेवालेका?'

'केदार वल्द शिवदत्त।'

माधवने बड़े भाईकी ओर चकित होकर देखा। आँखें डबडबा आयीं। केदार उसकी ओर देख न सका। नम्बरदार मुखिया और मुख्तार भी विस्मित हुए। क्या केदार खुद ही रुपया दे रहा है? बातचीत तो किसी साहूकारकी थी। जब घरहीमें रुपया मौजूद है तो इस रेहननामेकी आवश्यकता ही क्या थी? भाई-भाईमें इतना अविश्वास! अरे, राम! राम! क्या माधव ८०) को भी महँगा है? और यदि दबा ही बैठता तो क्या रुपये पानीमें चले जाते?

सभीकी आँखें सैन द्वारा परस्पर बातें करने लगी, मानो आश्चर्यकी अथाह नदीमें नौकायें डगमगाने लगी।

श्यामा दरवाजेकी चौखटपर खड़ी थी। वह सदा केदारकी प्रतिष्ठा करती थी, परन्तु आज केवल लोकरीतिने उसे अपने जेठको आड़े हाथों लेनेसे रोका।

बूढी अम्माने सुना तो सूखी नदी उमड़ आयी। उसने एक बार आकाशकी ओर देखा और माथा ठोंक लिया।

तब उसे उस दिनका स्मरण हुआ जब ऐसा ही सुहावना सुनहरा प्रभात था और दो प्यारे प्यारे बच्चे उसकी गोदमें बैठे हुए उछल कूदकर दूध रोटी खाते थे। उस समय माताके नेत्रोंमें

कितना अभिमान था, हृदयमें कितनी उमङ्ग और कितना उत्साह !

परन्तु आज, आह ! आज नयनोंमें लज्जा है और हृदयमें शोक सन्ताप । उसने पृथ्वीकी ओर देखकर कातर स्वरमें कहा—हे नारायण ! क्या ऐसे पुत्रोंको मेरी ही कोखमें जन्म लेना था !

———

बेटीका धन—

[१]

बेतवा नदी दो ऊँचे करारोंके बीच इस तरह मुँह छिपाये हुए थी जैसे निर्बल हृदयोंमें साहस और उत्साहकी मध्यम ज्योति छिपी रहती है । इसके एक करारपर एक छोटा-सा गाँव बसा है जो अपने भग्न जातीय चिह्नों के लिये बहुत ही प्रसिद्ध है । जातीय गाथाओं और चिह्नोंपर मर मिटनेवाले लोग इस भग्न स्थानपर बड़े प्रेम और श्रद्धाके साथ आते और गाँवका बूढ़ा केवट सुक्खू चौधरी उन्हें उसकी परिक्रमा कराता और रानीके महल, राजाका दरबार और कुँअरके बैठकके मिटे हुए चिह्नोंको दिखाता । वह एक उच्छ्वास लेकर रुँधे हुए गलेसे कहता—'महाशय ! एक वह समय था कि केवटोंको मछलियोंके इनाममें अशर्फियाँ मिलती थीं । कहार महलमें झाड़ू देते हुए

अशर्फियाँ बटोर ले जाते थे। बेतवा नदी रोज बढ़कर महाराजके चरण छूने आती थी। यह प्रताप और यह तेज था, परन्तु आज इसकी यह दशा है।' इन सुन्दर उक्तियोंपर किसीका विश्वास जमाना चौधरीके वशको बात न थी पर सुननेवाले उसकी सहृदयता तथा अनुरागके जरूर कायल हो जाते थे।

सुक्खू चौधरी उदार पुरुष थे, परन्तु जितना बड़ा मुँह था उतना बड़ा ग्रास न था। तीन लड़के, तीन बहुएँ और कई पौत्र पौत्रियाँ थी। लड़की केवल एक गङ्गाजली थी, जिसका अभीतक गौना नही हुआ था। चौधरीकी यह सबसे पिछली सन्तान थी। स्त्रीके मर जानेपर उसने इसको बकरीका दूध पिला-पिलाकर पाला था। परिवारमें खानेवाले तो इतने थे, पर खेती सिर्फ एक हलकी होती थी। ज्यों त्यों कर निर्वाह होता था, परन्तु सुक्खूकी वृद्धावस्था और पुरातत्व-ज्ञानने उसे गाँवमे वह मान और प्रतिष्ठा प्रदान कर रखी थी जिसे देखकर झगडू साहु भीतर ही भीतर जलते थे। सुक्खू जब गाँववालोंके समक्ष हाकिमोंसे हाथ फेंक-फेंककर बाते करने लगता और खण्डहरोंको घुमा फिराकर दिखाने लगता था तो झगड़ू साहु, जो चपरासियोंके धक्के खानेके डरसे करीब नही फटकते थे, तड़प तड़पकर रह जाते थे। अतः वे सदा उस शुभ अवसरकी प्रतीक्षा करते रहते थे जब सुक्खूपर अपने धन द्वारा प्रभुत्व जमा सकें।

[२]

इस गाँवके जमीदार ठाकुर जीतनसिंह थे, जिनकी बेगारके मारे गाँववालोके नाकोंदम था। उस साल जब जिला मजिस्ट्रे-

का दौरा हुआ और वह यहाके पुरातन चिह्नोंकी सैर करनेके लिये पधारे, तो सुक्खू चौधरीने दबी जबानसे अपने गाँववालोंकी दुःख कहानी उन्हें सुनायी। हाकिमोंसे वार्त्तालाप करनेमें उसे तनिक भी भय न होता था। सुक्खू चौधरीको खूब मालूम था कि जीतनसिंहसे रार मचाना सिंहके मुँहमें सिर देना है। किन्तु जब गाँववाले कहते थे कि चौधरी तुम्हारी ऐसे-ऐसे हाकिमोंसे मिताई है और हम लोगोंको रातदिन रोते कटता है तो फिर तुम्हारी यह मित्रता किस दिन काम आवेगी। 'परोपकाराय सताम् विभूतयः।' तब सुक्खूका मिजाज आसमानपर चढ जाता था। घड़ी भरके लिये वह जीतनसिंहको भूल जाता था। मजिस्ट्रेटने जीतनसिंहसे इसका उत्तर माँगा। उधर झगड़ू साहुने चौधरीके इस साहसपूर्ण स्वामीद्रोहकी रिपोर्ट जीतनसिंह को दी। ठाकुर साहब जलकर आग हो गये। अपने कारिन्देसे बकाया लगानकी बही माँगी। संयोगवश चौधरीके जिम्मे इस सालका कुछ लगान बाकी था। कुछ तो पैदावार कम हुई, उसपर गङ्गाजलीका व्याह करना पड़ा। छोटी बहू नथकी रट लगाये हुए थी, वह बनवानी पडी। इन सब खर्चोंने हाथ बिलकुल खाली कर दिया था। लगानके लिये कुछ अधिक चिन्ता नहीं थी। वह इस अभिमानमें भूला हुआ था कि जिस जबानमें हाकिमोंके प्रसन्न करनेकी शक्ति है क्या वह ठाकुर साहबको अपना लक्ष्य न बना सकेगी? बूढ़े चौधरी इधर तो अपने गर्वमें निश्चिन्त थे और उधर उनपर बकाया लगानकी नालिश ठुक गयी। सम्मन आ पहुँचा। दूसरे दिन पेशीकी तारीख पड़ गयी। चौधरीको अपना जादू चलानेका अवसर न मिला।

जिन लोगोंके बढ़ावेमें आकर सुक्खूने ठाकुरसे छेड़छाड़ की थी उनका दर्शन मिलना दुर्लभ हो गया। ठाकुर साहबके सहने और प्यादे गाँवमे चीलकी तरह मँड़राने लगे। उनके भयमे किसीको चौधरीकी परछाही काटनेका साहस न होता था। कचहरी यहासे तीन मीलपर थी। बरसातके दिन, रास्तेमें ठौर ठौर पानी और उमडी हुई नदियाँ, रास्ता कच्चा, बैलगाड़ीका निबाह नहीं, पैरोमें बल नही, अतः अदमपैरवीमे मुकदमा एक तरह फैसल हो गया।

[२]

कुर्कीका नोटिस पहुँचा तो चौधरीके हाथ पाँव फूले गये। सारी चतुराई भूल गयी। चुपचाप अपनी खाटपर पडा-पडा नदीकी ओर ताकता और मनमे कहता—क्या मेरे जीते ही जी घर मिट्टीमे मिल जायगा। मेरे इन बैलोंकी सुन्दर जोड़ीके गलेमें आह! क्या दूसरोंका जुआ पडेगा? यह सोचते सोचते उसकी आँखें भर आतीं। वह बैलोंसे लिपटकर रोने लगता, परन्तु बैलोंकी आँखोंसे क्यों आँसू जारी थे? वे नाँदमे मुँह क्यों नही डालते? क्या उनके हृदयपर भी अपने स्वामीके दुःखकी चोट पहुँच रही थी?

फिर वह अपने झोपडेको विकल नयनोंसे निहारकर देखता और मनमें सोचता—क्या हमको इस घरसे निकलना पडेगा? यह पूर्वजोंकी निशानी क्या हमारे जीते जी छिन जायगी?

कुछ लोग परीक्षामें दृढ रहते हैं और कुछ लोग इसकी हल्की आँच भी नहीं सह सकते। चौधरी अपनी खाटपर उदास पडे-

पड़े घरटों अपने कुलदेव महावीर और महादेवको मनाता और उनका गुण गाया करता। उसकी चिन्तादग्ध आत्माको और कोई सहारा न था।

इसमें कोई सन्देह न था कि चौधरीकी तीनों बहुओंके पास गहने थे, पर स्त्रीका गहना ऊखका रस है, जो पेरने हीसे निकलता है। चौधरी जातिका ओछा पर स्वभावका ऊँचा था। उसे ऐसी नीच बात बहुओसे कहते सकोच होता था, कदाचित् यह नीच विचार उसके हृदयमे उत्पन्न ही नही हुआ था, किन्तु तीनों बेटे यदि जरा भी बुद्धिसे काम लेते तो बूढेको देवताओंकी शरण लेनेकी आवश्यकता न होती। परन्तु यहाँ तो बात ही निराली थी। बड़े लडकेको घाटके कामसे फुरसत न थी। बाकी दो लड़के इस जटिल प्रश्नको विचित्र रूपसे हल करनेके मसूबे बाँध रहे थे।

मझले झीगुरने मुँह बनाकर कहा—ऊँह! इस गाँवमे क्या धरा है। जहाँ ही कमाऊँगा वही खाऊँगा। पर जीतनसिंहकी मूँछें एक एक करके चुन लूँगा।

छोटे फक्कड ऐंठकर बोले—मूँछें तुम चुन लेना। नाक मैं उड़ा दूँगा। नककटा बना घूमेगा।

इसपर दोनो खूब हँसे और मछली मारने चल दिये।

इस गाँवमें एक बूढ़े ब्राह्मण भी रहते थे। मन्दिरमें पूजा करते और नित्य अपने यजमानोंको दर्शन देने नदी पार जाते, पर खेवेके पैसे न देते। तीसरे दिन वह जमींदारके गुप्तचरोंकी आँख बचाकर सुक्खूके पास आये और सहानुभूतिके स्वरमे बोले—चौधरी! कल ही तक मियाद है और तुम अभीतक पड़े पड़े सो

रहे हो। क्यों नहीं घरकी चीज वस्तु ढूँढ ढाँढ़कर किसी और जगह भेज देते? न हो समधियाने पठवा दो। जो कुछ बच रहे वही सही। घरकी मिट्टी खोदकर थोड़े ही कोई ले जायगा।

चौधरी लेटा था, उठ बैठा और आकाशकी ओर निहार कर बोला—जो कुछ उसकी इच्छा है होगा। मुझसे यह जाल न होगा।

इधर कई दिनकी निरन्तर भक्ति और उपासनाके कारण चौधरीका मन शुद्ध और पवित्र हो गया था। उसे छल प्रपंचसे घृणा उत्पन्न हो गयी थी। पण्डितजी इस काममें सिद्धहस्त थे, लज्जित हो गये।

परन्तु चौधरीके घरके अन्य लोगोंको ईश्वरेच्छापर इतना भरोसा न था। धीरे धीरे घरके बर्तन-भाँड़े खिसकाये जाते थे। अनाजका एक दाना भी घरमें न रहने पाया। रातको नाव लदी हुई जाती और उधरसे खाली लौटती थी। तीन दिन तक घरमें चूल्हा न जला। बूढ़े चौधरीके मुँहमें अन्नकी कौन कहे पानीकी एक बूँद भी न पड़ी। स्त्रियाँ भाड़से चने भुनाकर चबातीं और लड़के मछलियाँ भून-भूनकर उड़ाते, परन्तु बूढ़ेकी इस एकादशी-में यदि कोई शरीक था तो वह उसकी बेटी गङ्गाजली थी। वह बेचारी अपने बूढ़े बापको चारपाईपर निर्जल छटपटाते देख बिलख बिलखकर रोती।

लड़कोंको अपने माता-पितासे वह प्रेम नहीं होता जो लड़कियोंको होता है। गङ्गाजली इस सोच-विचारमें मग्न रहती कि दादाकी किस भाति सहायता करूँ। यदि हम सब भाई-बहन मिलकर जीतनसिंहके पास जाकर दयाभिक्षाकी प्रार्थना करें तो वे

अवश्य मान जायँगे, परन्तु दादाको कब यह स्वीकार होगा। वह यदि एक दिन बड़े साहबके पास चले जायँ तो सब कुछ बात-की-बातमें बन जाय। किन्तु उनकी तो जैसे बुद्धि ही मारी गयी है। इसी उधेड़-बुनमें उसे एक उपाय सूझ पड़ा, कुम्हलाया हुआ मुखारविन्द खिल उठा।

पुजारीजी सुक्खू चौधरीके पाससे उठकर चले गये थे और चौधरी उच्च स्वरसे अपने सोये हुए देवताओंको पुकार पुकारकर बुला रहे थे। निदान गङ्गाजली उनके पास जाकर खड़ी हो गयी। चौधरीने उसे देखकर विस्मित स्वरमें पूछा—क्यों बेटी! इतनी रात गये क्यों बाहर आयी ?

गङ्गाजलीने कहा—बाहर रहना तो भाग्यमें लिखा है, घरमें कैसे रहूँ।

सुक्खूने जोर से हांक लगाई—कहाँ गये तुम कृष्ण मुरारी, मेरे दुःख हरो।

गङ्गाजली खड़ी थी, बैठ गयी और धीरेसे बोली—भजन गाते तो आज तीन दिन हो गये। घर बचानेका कुछ उपाय सोचा कि इसे यों ही मिट्टीमें मिला दोगे ? हम लोगोंको क्या पेड़ तले रखोगे ?

चौधरीने व्यथित स्वरसे कहा—बेटी! मुझे तो कोई उपाय नहीं सूझता। भगवान जो चाहेंगे होगा। बेग चलो गिरधर गोपाला, काहे विलम्ब करो।

गङ्गाजलीने कहा—मैंने एक उपाय सोचा है, कहो तो कहूँ।

चौधरी उठकर बैठ गये और पूछा—कौन उपाय है बेटी ?

गङ्गाजलीने कहा—मेरे गहने झगड़ू साहुके यहाँ गिरों रख

दो। मैंने जोड लिया है। देने भरके रुपये हो जायँगे।

चौधरीने ठण्ढी साँस लेकर कहा—बेटी! तुमको मुझसे यह बात कहते लाज नही आती। वेद शास्त्रमे मुझे तुम्हारे गाँवके कुएँका पानी पीना भी मना है। तुम्हारी ड्योढ़ीमें पैर रखनेका निषेध है! क्या तुम मुझे नरकमे ढकेलना चाहती हो?

गङ्गाजली उत्तरके लिये पहले हीसे तैयार थी, बोली—मै अपने गहने तुम्हें दिये थोडे ही देती हूँ। इस समय लेकर काम चलाओ चैतमे छुड़ा देना।

चौधरीने कड़ककर कहा—यह मुझसे न होगा।

गङ्गाजली उत्तेजित होकर बोली—तुमसे यह न होगा तो मैं आप ही जाऊँगी, मुझसे घरकी यह दुर्दशा नहीं देखी जाती।

चौधरीने झुँझलाकर कहा–विरादरीमें कौन मुँह दिखाऊँगा?

गङ्गाजलीने चिढकर कहा—विरादरीमे कौन ढिढोरा पीटने जाता है।

चौधरीने फैसला सुनाया—जग हँसाईके लिये मैं अपना धर्म्म न बिगाडूँगा।

गङ्गाजली बिगड़कर बोली—मेरी बात नहीं मानोगे तो तुम्हारे ऊपर मेरी हत्या पडेगी। मै आज ही इस बेतवा नदीमें कूद पडूँगी। तुमसे चाहे घरमें आग लगाते देखा जाय, पर मुझसे न देखा जायगा।

चौधरीने ठण्ढी साँस लेकर कातर स्वरमे कहा—बेटी, मेरा धर्म नाश मत करो। यदि ऐसा ही है तो अपनी किसी भावजके गहने माँगकर लाओ।

गङ्गाजलीने गम्भीर भावसे कहा—भावजोंसे कौन अपना

मुँह नोचवाने जायगा, उनको फिकर होती तो क्या मुँहमे दही जमा था, कहती नही ?

चौधरी निरुत्तर हो गये। गङ्गाजली घरमे जाकर गहनोंकी पिटारी लायी और एक एक करके सब गहने चौधरीके अंगोछेमें बाँध दिये। चौधरीने आँखोमे आँसू भरकर कहा—हाय राम ! इस शरीरकी क्या गति लिखी है। यह कहकर उठे। बहुत सम्हालनेपर भी आँखोंमें आँसू न छिपे।

[४]

रातका समय था। बेतवा नदीके किनारे-किनारे मार्गको छोड़कर सुक्खू चौधरी गहनोंकी गटरी काँखमे दबाये इस तरह चुपके-चुपके चल रहे थे, मानो पापकी गठरी लिये जाते हैं। जब वह झगड़ू साहुके मकानके पास पहुँचे तो ठहर गये, आँखे खूब साफ की, जिसमें किसीको यह बोध न हो कि चौधरी रोता था।

झगड़ू साहु धागेकी कमानोंकी एक मोटी ऐनक लगाये बही-खाता फैलाये हुक्का पी रहे थे और दीपकके धुँधले प्रकाशमें उन अक्षरोंके पढनेकी व्यर्थ चेष्टामें लगे थे जिनमे स्याहीकी बहुत किफायत की गई थी। बार बार ऐनकको साफ करते और आँख मलते, पर चिरागकी बत्ती उसकाना या दोहरी बत्ती लगाना शायद इसलिये उचित नही समझते थे कि तेलका अपव्यय होगा। इसी समय सुक्खू चौधरीने आकर कहा—जै रामजी !

झगड़ू साहुने देखा। पहचानकर बोले—जय राम चौधरी ! कहो, मुकद्दमेमें क्या हुआ ? यह लेन देन बड़े झंझटका काम है। दिनभर सिर उठानेकी छुट्टी नहीं मिलती।

चौधरीने पोटलीको खूब सावधानीने छिपाकर लापरवाहीके साथ कहा—अभीतक तो कुछ नहीं हुआ। कल्ह इजराय डिगरी होनेवाली है। ठाकुर साहबने न जाने कबका बैर निकाला है। हमको दो-तीन दिनकी भी मुहलत होती तो डिगरी न जारी होने पाती। छोटे साहब और बड़े साहब दोनों हमको अच्छी तरह जानते हैं। अभी इसी साल मैने उनसे नदी किनारे घण्टों बातें कीं। किन्तु एक तो बरसातके दिन, दूसरे एक दिनकी भी मुहलत नही, क्या करता। इस समय मुझे रुपयोंकी चिन्ता है।

झगड़ू साहुने विस्मित होकर पूछा—'तुमको रुपयोंकी चिन्ता! घरमें भरा है वह किस दिन काम आवेगा।' झगड़ू-साहुने यह व्यंग्यवाण नहीं छोड़ा था। वास्तवमें उन्हें और सारे गाँवको विश्वास था कि चौधरीके घरमें लक्ष्मी महारानीका अखण्ड राज्य है।

चौधरीका रंग बदलने लगा। बोले—साहुजी! रुपया होता तो किस बातको चिन्ता थी? तुमसे कौन छिपाव है? आज तीन दिनसे घरमें चूल्हा नही जला, रोना-पीटना पड़ा है। अब तो तुम्हारे बसाये बसूँगा। ठाकुर साहबने तो उजाड़नेमें कोई कसर न छोड़ी।

झगड़ू साहु जीतनसिंहको खुश रखना जरूर चाहते थे, पर साथ ही चौधरीको भी नाखुश करना मञ्जूर न था। यदि सूद दर सूद जोड़कर मूल तथा ब्याज सहजमें वसूल हो जाय तो उन्हें चौधरीपर मुफ्तका एहसान लादनेमे कोई आपत्ति न थी। यदि चौधरीके अफसरोंकी जान-पहिचानके कारण साहुजीका टैक्ससे गला छूट जाय, जो अनेकों उपाय करने, अहलकारोंकी मुट्ठी-

गरम करनेपर भी नित्य प्रति उनकी तोंदकी तरह बढ़ता ही जा रहा था तो क्या पूछना! बोले—क्या कहें चौधरीजी, खर्चके मारे आजकल हम भी तबाह हैं। लेहने वसूल नही होते। टैक्स का रुपया देना पडा। हाथ बिल्कुल खाली हो गया। तुम्हे कितना रुपया चाहिये?

चौधरीने कहा—सौ रुपयेकी डिगरी है। खर्च बर्च मिलाकर दो सौके लगभग समझो।

झगड़ू अब अपने दॉव खेलने लगे। पूछा—तुम्हारे लड़कों-ने तुम्हारी कुछ भी मदद न की। वह सब भी तो कुछ न कुछ कमाते ही हैं?

साहुजीका यह निशाना ठीक पड़ा। लड़कोंकी लापरवाहीसे चौधरीके मनमे जो कुत्सित भाव भरे थे, वह सजीव हो गये। बोला—भाई, लड़के किसी कामके होते तो यह दिन ही क्यो देखना पड़ता। उन्हें तो अपने भोग विलाससे मतलब। घर गृहस्तीका बोझ तो मेरे सिरपर है। मैं इसे जैसे चाहूँ सँभालूँ। उनसे कुछ सरोकार नही, मरते दम भी गला नही छूटता। मरूँगा तो सब खालमे भूसा भराकर रख छोड़ेंगे। 'गृह कारज नाना जंजाला।'

झगड़ूने दूसरी तीर मारी—क्या बहुओंसे भी कुछ न बन पडा।

चौधरीने उत्तर दिया—बहू बेटे सब अपनी अपनी मौजमे मस्त हैं। मै तीन दिनतक द्वारपर बिना अन्न जलके पडा था, किसीने बात भी नहीं पूछी। कहॉकी सलाह कहॉकी बातचीत। बहुओके पास रुपये न हो, पर गहने तो हैं और वे भी मेरे बन-

लाये हुए। इस दुर्दिनके समय यदि दो दो थान उतार देतीं तो क्या मैं छुड़ा न देता ? सदा यही दिन थोड़े ही रहेंगे।

झगड़ू समझ गये कि यह महज जबानका सौदा है और वह जबानका सौदा भूलकर भी न करते थे। बोले—तुम्हारे घरके लोग भी अनूठे हैं। क्या इतना भी नहीं जानते कि बूढ़ा रुपये कहासे लावेगा ? अब समय बदल गया। या तो कुछ जायदाद लिखो या गहने गिरों रक्खो, तब जाकर कहीं रुपया मिले। इसके बिना रुपये कहाँ। इसमें भी जायदादमे सैकड़ों बखेड़े पड़े हैं। सुभीता गिरों रखनेमें ही है। हाँ, तो जब घरवालोंको कोई इसकी फिक्र नही तो तुम क्यों व्यर्थ जान देते हो। यही न होगा कि लोग हँसेंगे। यह लाज कहाँतक निबाहोगे ?

चौधरीने अत्यन्त विनीत होकर कहा—साहुजी यही लाज तो मारे डालती है। तुमसे क्या छिपा है ? एक वह दिन था कि हमारे दादा बाबा महाराजकी सवारीके साथ चलते थे और अब एक दिन यह है कि घरकी दीवारतक बिकनेकी नौबत आ गयी है। कहीं मुँह दिखानेको भी जी नहीं चाहता। यह लो गहनोंकी पोटली। यदि लोकलाज न होती तो इसे लेकर कभी यहाँ न आता। परन्तु यह अधर्म इसी लाज निबाहनेके कारण करना पड़ा है।

झगड़ू साहुने आश्चर्यमें होकर पूछा—यह गहने किसके हैं ?

चौधरीने सिर झुकाकर बड़ी कठिनतासे कहा—मेरी बेटी गङ्गाजलीके।

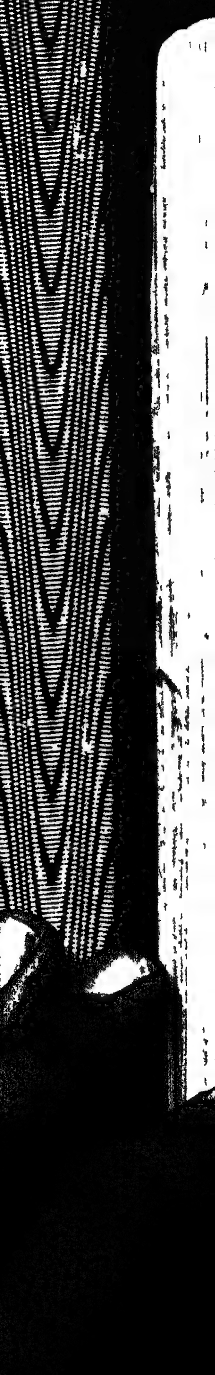
झगड़ू साहु स्तम्भित हो गये। बोले—अरे ! राम राम।

चौधरीने कातर स्वरमे कहा—डूब मरनेको जी चाहता है।

झगड़ू ने बड़ी धार्मिकताके साथ स्थिर होकर कहा—शास्त्रमें बेटीके गाँवका पेड़ देखना मना है।

चौधरीने दीर्घ निःश्वास छोड़कर करुण स्वरमें कहा—न जाने नारायण कब मौत देंगे। भाईजी! तीन लड़कियाँ व्याहीं। कभी भूलकर भी उनके द्वारका मुँह नहीं देखा। परमात्माने अबतक तो टेक निबाही है, पर अब न जाने मिट्टीकी क्या दुर्दशा होनेवाली है।

झगड़ू साहू 'लेखा जौ जौ, बखशीश सौ सौ' के सिद्धान्त पर चलते थे। सूदकी एक कौड़ी भी छोड़ना उनके लिये हराम था। यदि महीनेका एक दिन भी लग जाता तो पूरे महीनेका सूद वसूल कर लेते। परन्तु नवरात्रमें नित्य दुर्गापाठ करवाते थे। पितृपक्षमें रोज ब्राह्मणोंको सीधा बाँटते थे। बनियोंकी धर्ममें बडी निष्ठा होती है। झगड़ू साहुके द्वारपर सालमें एक बार भागवत पाठ अवश्य होता। यदि कोई दीन ब्राह्मण लड़की व्याहनेके लिये उनके सामने हाथ पसारता तो वह खाली हाथ न लौटता, भीख माँगनेवाले ब्राह्मणोंको चाहे वह कितने ही सण्डे मुसण्डे हों, उनके दरवाजेपर फटकार नहीं सुननी पड़ती थी। उनके धर्मशास्त्रमें कन्याके गाँवके कुएँ का पानी पीनेसे प्यासा मर जाना अच्छा था। वह स्वयं इस सिद्धन्तके भक्त थे और इस सिद्धान्तके अन्य पक्षपाती उनके लिये महामान्य देवता थे। वे पिघल गये, मनमें सोचा, यह मनुष्य तो कभी ओछे विचारों-को मनमें नहीं लाया। निर्दय कालकी ठोकरसे अधर्म मार्गपर उतर आया है तो उसके धर्मकी रक्षा करना हमारा कर्तव्यधर्म है। यह विचार मनमें आते ही झगड़ू साहु गद्दीसे मसनदके



धर्म-संकट—

[१]

"'पुरुषों और स्त्रियोंमें बड़ा अन्तर है, तुम लोगोंका हृदय शीशेकी तरह कठोर होता है और हमारा हृदय नरम, वह विरह-की आँच नहीं सह सकता।'

'शीशा ठेस लगते ही टूट जाता है। नरम वस्तुओंमें लचक होती है।'

'चलो, बातें न बनाओ। दिनभर तुम्हारी राह देखूँ, रात-भर घड़ीकी सूइयाँ, तब कहीं आपके दर्शन होते हैं।'

'मैं तो सदैव तुम्हें अपने हृदय मन्दिरमें छिपाए रखता हूँ।'

'ठीक बतलाओ कब आओगे?'

'ग्यारह बजे, परन्तु पिछला दरवाजा खुला रखना।'

'उसे मेरे नयन समझो।'

'अच्छा तो अब विदा।'

[२]

पण्डित कैलाशनाथ लखनऊके प्रतिष्ठित बैरिष्टरोंमेंसे थे। कई सभाओंके मन्त्री, कई समितियोंके सभापति, पत्रोंमें अच्छे-अच्छे लेख लिखते, प्लेटफार्मपर सारगर्भित व्याख्यान देते। पहले पहल जब वह यूरोपसे लौटे थे तो यह उत्साह अपनी पूरी उमङ्गपर था परन्तु ज्यों-ज्यों बैरिस्टरी चमकने लगी; इस

उत्साहमें कमी आने लगी और यह ठीक भी था, क्योंकि अब बेकार न थे जो बेगार करते। हाँ, क्रिकेटका शौक अबतक ज्यों-का-त्यों बना था। वह कैसरक्लबके संस्थापक और क्रिकेटके प्रसिद्ध खिलाड़ी थे।

यदि मि० कैलाशको क्रिकेटकी धुन थी तो उनकी बहन कामिनीको टेनिसका शौक था। इन्हें नित नवीन आमोद प्रमोद की चाह रहती थी। शहरमें कहीं नाटक हो, कोई थियेटर आवे, कोई सरकस, कोई बायसकोप हो, कामिनी उसमें न सम्मिलित हो, यह असम्भव बात थी। मनोविनोदकी कोई सामग्री उसके लिये उतनी ही आवश्यक थी, जितना वायु और प्रकाश।

मि० कैलाश पश्चिमीय सभ्यताके प्रवाहसे बहनेवाले अपने अन्य सहयोगियोंकी भांति हिन्दू जाति, हिन्दू सभ्यता, हिन्दी भाषा और हिन्दुस्तानके कट्टर विरोधी थे। हिन्दू सभ्यता उन्हें दोषपूर्ण दिखायी देती थी। अपने इन विचारोंको वे अपनेहीतक परिमित न रखते थे, बल्कि बड़ी ही ओजस्विनी भाषामें इन विषयोंपर लिखते और बोलते थे। हिन्दू सभ्यताके विवेकी भक्त उनके इन विवेकशून्य विचारोंपर हँसते थे परन्तु उपहास और विरोध तो सुधारकके पुरस्कार हैं। मि० कैलाश उनकी कुछ परवाह न करते थे। वे कोरे वाक्यवीर ही न थे, कर्मवीर भी पूरे थे। कामिनीकी स्वतन्त्रता उनके विचारोंका प्रत्यक्ष स्वरूप थी। सौभाग्यवश कामिनीके पति गोपालनारायण भी इन्हीं विचारोंमें रंगे हुए थे। वे सालभरसे अमेरिकामें विद्याध्ययन करते थे। कामिनी, भाई और पतिके उपदेशोंसे पूरा-पूरा लाभ उठानेमें कमी न करती थी।

[३]

लखनऊमें अल्फ्रेड थियेटर कम्पनी आयी हुई थी। शहरमें जहाँ देखिये उसीके तमाशेकी चर्चा थी। कामिनीकी रातें बड़े आनन्दसे कटती थीं। रातभर थियेटर देखती, दिनको कुछ सोती और कुछ देर वही थियेटरके गीत अलापती। सौन्दर्य और प्रीतिके नवरमणीय संसारमें रमण करती थी, जहाँका दुःख और क्लेश भी इस संसारके सुख और आनन्दसे बढ़कर मोददायी है। यहाँतक कि तीन महीने बीत गये। प्रणयकी नित्य नयी मनोहर शिक्षा और प्रेमके आनन्दमय आलाप-विलापका हृदय-पर कुछ-न-कुछ असर होना ही चाहिये था। सो भी इस चढ़ती जवानीमें। वह असर हुआ। इसका श्रीगणेश उसी तरह हुआ जैसा कि बहुधा हुआ करता है।

थियेटर हालमें एक सुघर सजीले युवककी आँखें कामिनीकी ओर उठने लगीं। वह रूपवती और चञ्चला थी, अतएव पहिले उसे चितवनमें किसी रहस्यका ज्ञान न हुआ। नेत्रोंका सुन्दरतासे बड़ा घना सम्बन्ध है। घूरना पुरुषका और लजाना स्त्रीका स्वभाव है। कुछ दिनोंके बाद कामिनीको इस चितवनमें कुछ गुप्त भाव झलकने लगे। मन्त्र अपना काम करने लगा। फिर नयनोंमें परस्पर बातें होने लगी। नयन मिल गये। प्रीति गाढ़ी हो गयी। कामिनी एक दिनके लिए भी यदि किसी दूसरे उत्सव-मे चली जाती तो वहाँ उसका मन न लगता। जी उचटने लगता। आँखें किसीको ढूँढ़ा करतीं।

अन्तमें लज्जाका बाँध टूट गया। हृदयके विचार स्वरूपवान

हुए। मौनका ताला टूटा। प्रेमालाप होने लगा। पद्यके बाद गद्यकी बारी आयी और फिर दोनों मिलन-मन्दिरके द्वारपर आ पहुँचे। इसके पश्चात् जो कुछ हुआ उसकी झलक हम पहले ही देख चुके हैं।

[४]

इस नवयुवकका नाम रूपचन्द था। पञ्जाबका रहनेवाला, संस्कृतका शास्त्री, हिन्दी साहित्यका पूर्ण पण्डित, अङ्गरेजीका एम० ए०, लखनऊके एक बड़े लोहेके कारखानेका मैनेजर था। घरमें रूपवती स्त्री, दो प्यारे बच्चे थे। अपने साथियोंमे सदाचरणके लिए प्रसिद्ध था। न जवानीकी उमङ्ग, न स्वभावका छिछोरापन। घर-गृहस्थीमें जकड़ा हुआ था। मालूम नही वह कौनसा आकर्षण था, जिसने उसे इस तिलस्ममे फँसा लिया, जहाँकी भूमि अग्नि और आकाश ज्वाला है, जहाँ घृणा और पाप है और अभागी कामिनीको क्या कहा जाय जिसकी प्रीतिकी बाढने धीरता और विवेकका बाँध तोड़कर अपनी तरल तरङ्गमें नीति और मर्यादाकी टूटी फूटी झोपडीको डुबो दिया। यह पूर्वजन्मके सस्कार थे।

रातके दस बज गये थे। कामिनी लैम्पके सामने बैठी हुई चिट्ठियाँ लिख रही थी। पहला पत्र रूपचन्दके नाम था।

कैलाश भवन, लखनऊ,

प्राणाधार !

तुम्हारे पत्रको पढ़कर प्राण निकल गये। उफ ! अभी एक महीना लगेगा। इतने दिनोंमें कदाचित् तुम्हें यहाँ मेरी राख भी

न मिलेगी। तुमसे अपने दुःख क्या रोऊँ। बनावटके दोषारोपणसे डरती हूँ। जो कुछ बीत रही है वह मैं ही जानती हूँ। लेकिन बिना विरह कथा सुनाए दिलकी जलन कैसे जायगी? यह आग कैसे ठण्डी होगी? अब मुझे मालूम हुआ कि यदि प्रेम दहकती हुई आग है तो वियोग उसके लिये घृत है। थियेटर अब भी जाती हूँ, पर विनोदके लिये नहीं, रोने और विसूरनेके लिये, रोनेमें ही चित्तको कुछ शान्ति मिलती है, आँसू उमड़े चले आते हैं। मेरा जीवन शुष्क और नीरस हो गया है। न किसीसे मिलनेको जी चाहता है न आमोद-प्रमोदमें मन लगता है। परसों डाक्टर केलकरका व्याख्यान था, भाई साहबने बहुत आग्रह किया, पर मै न जा सकी। प्यारे! मौतसे पहले मत मारो। आनन्दके इन गिने-गिनाये क्षणोंमें वियोगका दुःख मत दो। आओ, यथासाध्य शीघ्र आओ, और गलेसे लगाकर मेरे हृदयकी ताप बुझाओ। अन्यथा आश्चर्य नहीं कि विरहका यह अथाह सागर मुझे निगल जाय।

तुम्हारी—कामिनी

इसके बाद कामिनीने दूसरा पत्र पतिको लिखा।

माई डियर गोपाल!

अब तक तुम्हारे दो पत्र आये। परन्तु खेद, मै उनका उत्तर न दे सकी। दो सप्ताहसे सिरकी पीड़ासे असह्य वेदना सह रही हूँ। किसी भाति चित्तको शान्ति नहीं मिलती। पर अब कुछ स्वस्थ हूँ। कुछ चिन्ता मत करना। तुमने जो नाटक भेजे उनके लिये मैं हार्दिक धन्यवाद देती हूँ, स्वस्थ हो जानेपर पढ़ना

आरम्भ करूँगी। तुम वहाँके मनोहर दृश्योंका वर्णन मत किया करो। मुझे तुमपर ईर्ष्या होती है। यदि मैं आग्रह करूँ तो भाई साहब वहाँतक पहुँचा तो देंगे, परन्तु इनके खर्च इतने अधिक हैं कि इनसे नियमित रूपसे साहाय्य मिलना कठिन है और इस समय तुमपर भार देना भी कठिन है, ईश्वर चाहेगा तो वह दिन शीघ्र देखनेमें आवेगा जब मैं तुम्हारे साथ आनन्दपूर्वक वहाँकी सैर करूँगी। मैं इस समय तुम्हे कोई कष्ट तो नहीं देना चाहती पर अपनी आवश्यकताएँ किससे कहूँ। मेरे पास अब कोई अच्छा गाउन नहीं रहा। किसी उत्सवमें जाते लजाती हूँ। यदि तुमसे हो सके तो मेरे लिये एक अपने पसन्दका गाउन बनवा कर भेज दो। आवश्यकता तो और भी कई चीजोंकी है परन्तु इस समय तुम्हें अधिक कष्ट देना नही चाहती। आशा है, तुम सकुशल होगे।

तुम्हारी—

कामिनी

[५]

लखनऊके सेशन जजके इजलासमें बडी भीड़ थी। अदालतके कमरे ठसाठस भर गये थे। तिल रखनेकी जगह न थी। सबकी दृष्टि बड़ी उत्सुकताके साथ जजके सम्मुख खड़ी एक सुन्दर लावण्यमयी मूर्त्तिपर लगी हुई थी। यह कामिनी थी। उसका मुँह धूमिल हो रहा था। ललाटपर स्वेत विन्दु झलक रहे थे। कमरेमे घोर निस्तब्धता थी। केवल वकीलोंकी कानाफूसी और सैन कभी-कभी इस निस्तब्धताको भंग कर देती थीं।

अदालतका हाता आदमियोंसे इस तरह भर गया था कि जान पड़ता था मानो सारा शहर सिमिटकर यहीं आ गया है। था भी ऐसा ही। शहरकी प्रायः दूकाने बन्द थीं और जो एक आध खुली भी थी उनपर लड़के बैठे ताश खेल रहे थे, क्योंकि कोई गाहक न था। शहरसे कचहरियोंतक आदमियोंका ताता लगा हुआ था। कामिनीको निमिषमात्र देखनेके लिये, उसके मुँहसे एक बात सुननेके लिए, इस समय प्रत्येक आदमी अपना सर्वस्व निछावर करनेपर तैयार था। वे लोग जो कभी पण्डित दाता दयाल शर्मा जैसे प्रभावशाली वक्ताकी वक्तृता सुननेके लिये घरसे बाहर नहीं निकले, वे जिन्होंने नवजवान मनचले बेटोंको अल्फ्रेड थियेटरमे जानेकी आज्ञा नहीं दी, वे एकान्त-प्रिय जिन्हे वायसरायके शुभागन तककी खबर न हुई थी, वे शान्तिके उपासक जो मुहर्रमकी चहलपहल देखनेको अपनी कुटियासे बाहर न निकलते थे, वे सभी आज गिरते पड़ते, उठते बैठते, कचहरीकी ओर दौड़े चले जा रहे थे। बेचारी स्त्रिया अपने भाग्यको कोसती हुई अपनी अपनी अटारियोंपर चढकर विवशतापूर्ण उत्सुक दृष्टिसे उस तरफ ताक रही थी जिधर उनके विचारमें कचहरी थी। पर उनकी गरीब आँखें निर्दय अट्टालिकाओंकी दीवारोंसे टकराकर लौट आती थीं। यह सब कुछ इसलिये हो रहा था कि आज अदालतमें एक बड़ा मनोहर अद्भुत अभिनय होनेवाला था, जिसपर अल्फ्रेड थियेटरके हजारों अभिनय बलिदान थे। आज एक गुप्तरहस्य खुलनेवाला था, जो अन्धेरेमें राई है, पर प्रकाशमें पर्वताकार हो जाता है। इस घटनाके सम्बन्धमें लोग टीका टिप्पणी कर रहे थे। कोई कहता

था, यह असम्भव है, कि रूपचन्द जैसा शिक्षित व्यक्ति ऐसा दूषित कर्म करे। पुलिसका यह बयान है तो हुआ करे। गवाह पुलिसके-बयानका समर्थन करते हैं तो किया करें। यह पुलिसका अत्याचार है, अन्याय है। कोई कहता था, भाई सत्य तो यह है कि यह रूप लावण्य, यह 'खजन गंजन नयन' और यह हृदय-हारिणी सुन्दर सलोनी छवि जो कुछ न करे वह थोड़ा है। श्रोता इन बातोंको बड़े चावसे इस तरह आश्चर्यान्वित हो मुँह बनाकर सुनते थे, मानो देववाणी हो रही है। सबकी जीभपर यही चर्चा थी। खूब नमक मिर्च लपेटा जाता था। परन्तु इसमें सहानुभूति या समवेदनाके लिये जरा भी स्थान न था।

[६]

पण्डित कैलासनाथका बयान खतम हो गया और कामिनी इजलासपर पधारी। इसका बयान बहुत संक्षिप्त था—मैं अपने कमरेमें रातको सो रही थी। कोई एक बजेके करीब चोर-चोरका हल्ला सुनकर मैं चौंक पड़ी और अपनी चारपाईके पास चार आदमियोंको हाथापाई करते देखा। मेरे भाई साहब अपने दो चौकीदारोंके साथ अभियुक्तको पकड़ते थे और वह जान छुड़ाकर भागना चाहता था। मैं शीघ्रतासे उठकर बरामदेमें निकल आयी। इसके बाद मैंने चौकीदारोंको अपराधीके साथ पुलिस स्टेशनकी ओर जाते देखा।

रूपचन्दने कामिनीका बयान सुना और एक ठण्ढी साँस ली। नेत्रोंके आगेसे परदा हट गया। कामिनी, तू ऐसी कृतघ्न ऐसी अन्यायी, ऐसी पिशाचिनी, ऐसी दुरात्मा है! क्या तेरी

वह प्रीति, वह विरह-वेदना, वह प्रेमोद्‌गार, सब धोखेकी टट्टी थी। तूने कितनी बार कहा है कि दृढ़ता प्रेम-मन्दिरकी पहिली सीढ़ी है। तू कितनी बार नयनोंमें आँसू भरकर इसी गोदमें मुँह छिपाकर मुझसे कहा है कि मैं तुम्हारी हो गयी। मेरी लाज अब तुम्हारे हाथमें है; परन्तु हाय! आज प्रेम-परीक्षाके समय तेरी वह सब बातें खोटी-उतरीं। आह! तूने दगा दिया और मेरा जीवन मिट्टीमें मिला दिया।

रूपचन्द तो विचार-तरंगोंमें निमग्न था। उनके वकीलने कामिनीसे जिरह करनी प्रारम्भ की।

वकील—क्या तुम सत्यनिष्ठाके साथ कह सकती हो कि रूपचन्द तुम्हारे मकानपर अक्सर नहीं जाया करता था?

कामिनी – मैंने कभी उसे अपने घरपर नहीं देखा।

वकील—क्या तुम शपथपूर्वक कह सकती हो कि तुम उसके साथ कभी थियेटर देखने नहीं गयी?

कामिनी—मैंने उसे कभी नहीं देखा।

वकील—क्या तुम शपथ लेकर कह सकती हो कि तुमने उसे प्रेम-पत्र नहीं लिखे?

शिकारके चगुलमें फँसे हुए पक्षीकी तरह पत्रका नाम सुनते ही कामिनीके होश हवाश उड़ गये, हाथ पैर फूल गये। मुँह न खुल सका। जजने, वकीलने और दो सहस्र आँखोंने उसकी तरफ उत्सुकतासे देखा।

रूपचन्देका मुँह खिल गया। उसके हृदयमें आशाका उदय हुआ। जहाँ फूल था वहाँ काँटा पैदा हुआ। मनमें कहने लगा—कुलटा कामिनी! अपने सुख और अपने कपट मान

प्रतिष्ठापर मेरे और मेरे परिवारकी हत्या करनेवाली कामिनी !! तू अब भी मेरे हाथमें है। मैं अब भी तुझे इस कृतघ्नता और कपट-का दण्ड दे सकता हूँ। तेरे पत्र जिन्हें तूने सत्य हृदयसे लिखे हैं या नहीं, मालूम नहीं, परन्तु जो मेरे हृदयकी तापको शीतल करनेके लिये मोहिनी मन्त्र थे, वह सब मेरे पास हैं और वह इसी समय तेरा सब भेद खोलेंगे। इस क्रोधसे उन्मत्त होकर रूपचन्दने अपने कोटकी पाकेटमें हाथ डाला। जजने, वकीलोंने और दो सहस्र नेत्रोंने उसकी तरफ चातककी भांति देखा।

तब कामिनीकी विकल आँखें चारों ओरसे हताश होकर रूपचन्दकी ओर पहुँचीं। उनमें इस समय लज्जा थी, दयाभिक्षा-की प्रार्थना थी और व्याकुलता थी, मन-ही-मन कहती थी—मैं स्त्री हूँ, अबला हूँ, ओछी हूँ, तुम पुरुष हो, बलवान हो, साहसी हो, यह तुम्हारे स्वभावके विपरीत है। मैं कभी तुम्हारी थी और यद्यपि समय मुझे तुमसे अलग किए देता है, किन्तु मेरी लाज तुम्हारे हाथमें है, तुम मेरी रक्षा करो। आँखें मिलते ही रूपचंद उसके मनकी बात ताड़ गये। उनके नेत्रोंने उत्तर दिया—यदि तुम्हारी लाज मेरे हाथोंमें है तो इसपर कोई आँच नहीं आने पावेगी। तुम्हारी लाजपर आज मेरा सर्वस्व निछावर है।

अभियुक्तके वकीलने कामिनीसे पुनः वही प्रश्न किया—क्या तुम शपथपूर्वक कह सकती हो कि तुमने रूपचन्दको प्रेमपत्र नहीं लिखे ?

कामिनीने कातर स्वरमें उत्तर दिया—मैं शपथपूर्वक कहती हूँ कि मैंने उसे कभी कोई पत्र नहीं लिखा और अदालतसे अपील करती हूँ कि वह मुझे इन घृणास्पद अश्लील आक्रमणोंसे बचावे।

है। अपराध स्वीकार करनेसे उसका दण्ड कम नहीं होता। अतः मैं उसे ५ वर्षके सपरिश्रम कारावासकी सजा देता हूँ।

दो हजार मनुष्योंने हृदय थामकर फैसला सुना। मालूम होता था कि कलेजेमें भाले चुभ गये हैं। सभीका मुँह निराशा-जनक क्रोधसे रक्तवर्ण हो रहा था। यह अन्याय है, कठोरता है और बेरहमी है। परन्तु रूपचन्दके मुँहपर शान्ति विराज रही थी।

दुर्गाका मन्दिर—

[१]

बाबू ब्रजनाथ कानून पढ़नेमें मग्न थे और उनके दोनों बच्चे लड़ाई करनेमें। श्यामा चिल्लाती थी कि मुन्नू मेरी गुड़िया नहीं देता। मुन्नू रोता था कि श्यामाने मेरी मिठाई खा ली।

ब्रजनाथने क्रुद्ध होकर भामासे कहा—तुम इन दुष्टोंको यहाँसे हटाती हो कि नहीं, नहीं तो मैं एक-एककी खबर लेता हूँ।

भामा चूल्हेमें आग जला रही थी, बोली—अरे तो अब क्या सन्ध्याको भी पढ़ते ही रहोगे? जरा दम तो ले लो।

ब्रजनाथ—उठा तो न जायगा; बैठी बैठी वहींसे कानून बघार रही हो। अभी एक-आधको पटक दूँगा तो वहाँसे गरजती हुई आओगी कि हाय! हाय! बच्चेको मार डाला।

भामा—तो मैं कुछ बैठी या सोई तो नहीं हूँ, जरा एक घडी तुम्हीं लड़कोंको बहला दोगे तो क्या होगा। कुछ मैंने ही उनकी नौकरी नही लिखायी!

बाबू ब्रजनाथसे कोई जवाब न देते बन पड़ा। क्रोध, पानी-के समान बहावका मार्ग न पाकर और भी प्रबल हो जाता है। यद्यपि ब्रजनाथ नैतिक सिद्धान्तोंके ज्ञाता थे, पर उनके पालनमें इस समय कुशल न दिखायी दी। मुद्दई और मुद्दालेह दोनोंको एक ही लाठी हाँका और दोनोंको रोते-चिल्लाते छोड़ कानूनका ग्रन्थ बगलमें दबा, कालेज पार्ककी राह ली।

[२]

सावनका महीना था। आज कई दिनके बाद बादल खुले थे, हरे-भरे वृक्ष सुनहरी चादरें ओढ़े खड़े थे। मृदु समीर सावनके राग गाती थी और बगुले डालियोंपर बैठे हिंडोले झूल रहे थे। ब्रजनाथ एक बेंचपर जा बैठे और किताब खोली, लेकिन इस ग्रन्थकी अपेक्षा प्रकृति ग्रन्थका अवलोकन अधिक चित्ता-कर्षक था। कभी आसमानको पढ़ते थे, कभी पत्तियोंको, कभी छविमयी हरियालीको और कभी सामने मैदानमें खेलते हुए लड़कोंको।

यकायक उन्हें सामने घासपर कागजकी एक पुड़िया दिखाई दी। मायाने जिज्ञासाकी आड़में कहा—देखें इसमें क्या है?

बुद्धिने कहा—तुमसे मतलब? पड़ी रहने दो।

लेकिन जिज्ञासा-रूपी मायाकी जीत हुई। ब्रजनाथने उठकर पुड़िया उठा ली। कदाचित् किसीके पैसे पुड़ियामें लिपटे गिर

पड़े हैं। खोलकर देखा, वे सावरेन थे! गिना पूरे आठ निकले। कुतूहलकी सीमा न रही।

ब्रजनाथकी छाती धड़कने लगी। आठो सावरेन हाथमें लिये वे सोचने लगे—इन्हें क्या करूँ? अगर यहीं रख दूँ तो न जाने किसकी नजर पड़े, न मालूम कौन उठा ले जाय! नही, यहाँ रखना उचित नही, चलूँ थानेमे इसकी इत्तला कर दूँ और ये सावरेन थानेदारको सौंप दूँ। जिसके होंगे वह आप ले जायगा या अगर उसे न भी मिले तो मुझपर कोई दोष न रहेगा, मै तो अपने उत्तरदायित्वसे मुक्त हो जाऊँगा।

मायाने परदेकी आड़से मन्त्र मारना प्रारम्भ किया। वे थाने न गये; सोचा; चलूँ, भामासे एक दिल्लगी करूँ। भोजन तैयार होगा। कल इतमिनानसे थाने जाऊँगा।

भामाने सावरेन देखे, हृदयमें एक गुदगुदी सी हुई। पूछा—किसकी हैं?

'मेरी।'

'चलो, कहीं हो न।'

'पड़ी मिली हैं।'

'झूठी बात। ऐसे ही भाग्यके बली हो तो सच बताओ कहाँ मिलीं? किसकी हैं?'

'सच कहता हूँ पड़ी मिली हैं।'

'मेरी कसम?'

'तुम्हारी कसम।'

भामा गिन्नियोंको पतिके हाथसे छीननेकी चेष्टा करने लगी।

ब्रजनाथने कहा—क्यों छीनती हो?

भामा—लाओ मैं अपने पास रख लूँ।

'रहने दीजिये, मैं इनकी इत्तला करने थाने जाता हूँ।'

भामाका मुख मलीन हो गया। बोली—पड़े हुए धनकी क्या इत्तला?

ब्रजनाथ—हाँ और क्या, इन आठ गिन्नियोंके लिए ईमान बिगाड़ूँगा न?

भामा—अच्छा तो सवेरे चले जाना। इस समय जाओगे तो आनेमें देरी होगी।

ब्रजनाथने भी सोचा, यही अच्छा है। थानेवाले रातको तो कोई कार्रवाई करेंगे नहीं। जब अशर्फियोंको पड़ा ही रहना है तब जैसे थाना वैसे मेरा घर।

गिन्नियाँ सन्दूकमें रख दीं। खा पीकर लेटे तो भामाने हँस-कर कहा—आया धन क्यों छोड़ते हो, लाओ मैं अपने लिये एक गुलूबन्द बनवा लूँ, बहुत दिनोंसे जी तरस रहा है।

मायाने इस समय हास्यका रूप धारण किया था।

ब्रजनाथने तिरस्कार करके कहा—गुलूबन्दकी लालसामें गलेमें फाँसी लगाना चाहती हो क्या?

[३]

प्रातःकाल ब्रजनाथ थाने चलनेके लिये प्रस्तुत हुए। कानून-का एक लेक्चर छूट जायगा कोई हरज नहीं। वे इलाहाबादके हाईकोर्टमें अनुवादक थे। नौकरीमें उन्नतिकी आशा देखकर सालभरसे वकालतकी तैयारीमें मग्न थे। लेकिन अभी कपड़े पहिन ही रहे थे कि उनके एक मित्र, मुन्शी गोरेलाल आकर

बैठ गये और अपनी पारिवारिक दुश्चिन्ताओंकी विस्तृत राम कहानी सुनाकर अत्यन्त विनयभावसे बोले—भाई साहब, इस समय मैं इन झगझटोंमें ऐसा फँस गया हूँ कि बुद्धि कुछ काम नहीं करती। तुम बड़े आदमी हो। इस समय कुछ सहायता करो। ज्यादा नहीं, तीस रुपये दे दो। किसी-न-किसी तरह काम चला लूँगा। आज ता० ३० है। कल शामको तुम्हें रुपये मिल जायँगे।

ब्रजनाथ बड़े आदमी तो न थे, किन्तु बड़प्पनकी हवा बाँध रखी थी। यह मिथ्याभिमान उनके स्वभावकी एक दुर्बलता थी। केवल अपने वैभवका प्रभाव डालनेके लिये ही वे बहुधा मित्रों-की छोटी मोटी आवश्यकताओंपर अपनी वास्तविक आवश्यकता-ओंका अर्पण कर दिया करते थे। लेकिन भामाको इस विषयमें उनसे सहानुभूति न थी। वह दिखानेके लिये इस आत्म-त्यागको व्यर्थ समझती थी। इसलिये जब ब्रजनाथपर इस प्रकारका संकट आ पड़ता था, तब थोड़ी देरके लिये उनकी पारिवारिक शान्ति अवश्य भङ्ग हो जाती थी। उनमें इन्कार करने या टालनेकी हिम्मत न थी।

वे कुछ सकुचाते हुए भामाके पास गये और बोले—तुम्हारे पास तीस रुपये तो न होंगे? मुन्शी गोरेलाल माँग रहे हैं।

भामाने रुखाईसे कहा - मेरे पास रुपये नहीं हैं।

ब्रजनाथ—होंगे तो जरूर, बहाना करती हो।

भामा—अच्छा, बहाना ही सही।

ब्रजनाथ—तो मैं उनसे क्या कह दूँ?

भामा—कह दो, घरमें रुपये नहीं हैं, तुमसे न कहते बने तो मैं पर्देकी आड़से कह दूँ।

ब्रजनाथ—कहनेको तो मै कह दूँ, लेकिन उन्हें विश्वास न आवेगा, समझेंगे बहाना कर रहे हैं।

भामा—समझेंगे; समझा करें।

ब्रजनाथ—मुझसे तो ऐसी बेमुरौवती नहीं हो सकती। रात दिन का साथ ठहरा कैसे इन्कार करूँ?

भामा—अच्छा, तो जो मनमें आवे सो करो। मैं एक बार कह चुकी हूँ कि मेरे पास रुपये नही है।

ब्रजनाथ मनमें बहुत खिन्न हुए। उन्हें विश्वास था कि भामाके पास रुपये हैं, लेकिन केवल मुझे लज्जित करनेके लिये इन्कार कर रही है। दुराग्रहने सङ्कल्पको दृढ कर दिया। सन्दूक-से दो गिन्नियाँ निकालीं और गोरेलालको देकर बोले—भाई कल शामको कचहरीसे आते ही रुपये दे जाना। ये एक आदमी-की अमानत हैं। मै इसी समय देने जा रहा था। यदि कल रुपये न पहुँचे तो मुझे बहुत लज्जित होना पडेगा; कही मुँह दिखाने योग्य न रहूँगा।

गोरेलालने मनमें कहा—अमानत स्त्रीके सिवा और किसकी होगी और गिन्नियाँ जेबमे रखकर घरकी राह ली।

[४]

आज पहली तारीखकी सन्ध्या है। ब्रजनाथ दरवाजेपर बैठे हुए गोरेलालका इन्तजार कर रहे हैं।

पाँच बज गये, गोरेलाल अभीतक नहीं आये। ब्रजनाथकी आँख रास्तेकी तरफ लगी हुई थी। हाथमें एक पत्र था। लेकिन पढ़नेमें जी न लगता था। हर तीसरे मिनट रास्तेकी ओर देखने

लगते थे। लेकिन आज वेतन मिलनेका दिन है। इसी कारण आनेमें देर हो रही है; आते ही होंगे। छः बजे, गोरेलालका पता नहीं। कचहरीके कर्मचारी एक-एक करके चले आ रहे थे। ब्रजनाथको कई बार धोखा हुआ। वे आ रहे हैं। जरूर वे ही हैं। वैसी ही अचकन है। वैसी ही टोपी। चाल भी वही है। हाँ, वही हैं। इसी तरफ आ रहे हैं। अपने हृदयसे एक बोझसा उतरता मालूम हुआ। लेकिन निकट आनेपर ज्ञात हुआ कि कोई और है। आशाकी कल्पित मूर्ति दुराशामें विलीन हो गयी।

ब्रजनाथका चित्त खिन्न होने लगा। वे एक बार कुरसीपरसे उठे। बरामदेकी चौखटपर खडे होकर सड़कके दोनों तरफ निगाह दौड़ायी। कहीं पता नहीं।

दो तीन बार दूरसे आते हुए इक्कोंको देखकर गोरेलालका भ्रम हुआ। आकांक्षाकी प्रबलता!

सात बजे। चिराग जल गये। सडकपर अन्धेरा छाने लगा। ब्रजनाथ सड़कपर उद्विग्न भावसे टहलने लगे। इरादा हुआ गोरेलालके घर चलूँ। उधर कदम बढ़ाये। लेकिन हृदय कॉप रहा था कि कहीं वे रास्तेमें जाते हुए मिल जाय तो समझेंगे कि थोडेसे रुपयेके लिए इतने व्याकुल हो गये। थोड़ी ही दूर गये कि किसीको आते देखा। भ्रम हुआ गोरेलाल हैं। मुड़े और सीधे बरामदेमें आकर दम लिया। लेकिन फिर वही धोखा! फिर वही भ्रान्ति। तब सोचने लगे कि इतनी देर क्यों हो रही है। क्या अभीतक वे कचहरीसे न आये होंगे? ऐसा कदापि नहीं हो सकता। उनके दफ्तरवाले मुद्दत हुई निकल गये। बस, दो

बातें हो सकती हैं। या तो उन्होंने कल आनेका निश्चय कर लिया, समझे होंगे कि रातको कौन जाय या जान-बूझकर बैठ रहे होंगे; देना न चाहते होंगे। उस समय उनकी गरज थी इस समय मेरी गरज है। मैं ही किसीको क्यों न भेज दूँ, लेकिन किसे भेजूँ! मन्नू जा सकता है। सड़क हीपर मकान है। यह सोच-कर कमरेमें गये। लैम्प जलाया और पत्र लिखने बैठे, मगर आँखें द्वार हीकी ओर लगी हुई थीं। अकस्मात् किसीके पैरकी आहट सुनाई दी। तुरन्त पत्रको एक किताबके नीचे दबा लिया और बरामदेमें चले आये। देखा तो पड़ोसका एक कुंजड़ा है, तार पढ़ाने आया है। उससे बोले—भाई, इस समय फुरसत नहीं है, थोड़ी देरमें आना।

उसने कहा—बाबूजी, घरपरके प्राणी घबराये हैं, जरा एक निगाह देख लीजिये।

निदान व्रजनाथने झुँझलाकर उसके हाथसे तार ले लिया। और सरसरी दृष्टिसे देखकर बोले—कलकत्ते से आया है, माल नहीं पहुँचा।

कुँजड़ेने डरते-डरते कहा—बाबूजी, इतना और देख लीजिये कि किसने भेजा है।

इसपर व्रजनाथने तारको फेंक दिया और बोले—मुझे इस वक्त फुरसत नहीं है।

आठ बज गये। व्रजनाथको निराशा होने लगी। मन्नू इतनी रात बीते नहीं जा सकता। मनमें निश्चय किया, मुझे आपही जाना चाहिये; बलासे बुरा मानेंगे। इसकी कहाँतक चिन्ता करूँ। स्पष्ट कह दूँगा, मेरे रुपये दे दो। भलमनसी भलेमानसोंसे निभायी

जा सकती है। ऐसे धूर्तोंके साथ भलमनसीका व्यवहार करना मूर्खता है। अचकन पहनी। घरमें जाकर भामासे कहा—जरा एक कामसे बाहर जाता हूँ किवाड़ बन्द कर लो।

चलनेको तो चले, लेकिन पग-पगपर रुकते जाते थे। गोरेलालका घर दूरसे दिखायी दिया; लैम्प जल रहा था। ठिठक गये और सोचने लगे—चलकर क्या कहूँगा? कही उन्होने जाते-जाते रुपये निकालकर दे दिये और देरीके लिये क्षमा मागी, तो मुझे बड़ी झेप होगी। वे मुझे क्षुद्र, ओछा, धैर्यहीन समझेगे। नही; रुपयेकी बातचीत करूँ ही क्यों? कहूँगा, भाई घरमे बड़ी देरसे पेट दर्द कर रहा है, तुम्हारे पास पुराना तेज सिरका तो नही है, मगर नही, यह बहाना कुछ भद्दा सा प्रतीत होता है। साफ कलई खुल जायगी। उँह! इस झझटकी जरूरत ही क्या है। वे मुझे देखकर खुद ही समझ जायँगे। इस विषयमे बातचीतकी कुछ नौबत ही न आवेगी। ब्रजनाथ इसी उधेड़ बुनमे आगे बढते चले जाते थे जैसे नदीकी लहरे चाहे किसी ओर चले, धारा अपना मार्ग नहीं छोड़ती।

गोरेलालका घर आ गया। द्वार बन्द था। ब्रजनाथको उन्हे पुकारनेका साहस न हुआ। समझे खाना खा रहे होंगे। दरवाजे के सामनेसे निकले और धीरे-धीरे टहलते हुए एक मीलतक चले गये। ९ बजनेकी आवाज कानमे आयी। गोरेलाल भोजन कर चुके होंगे, यह सोचकर लौट पडे। लेकिन द्वारपर पहुँचे तो अन्धेरा था। वह आकाशरूपी दीपक बुझ गया था। एक मिनटतक दुविधामे खड़े रहे। क्या करूँ? हाँ, अभी बहुत सबेरा है। इतनी जल्दी थोड़े ही सो गये होंगे। दबे पाँव बरामदेपर चढ़े।

द्वापर कान लगाकर सुना, चारों ओर ताक रहे थे कि कहीं कोई देख न ले। कुछ बातचीतकी भनक कानमें पड़ी। ध्यानसे सुना। स्त्री कह रही थी—'रुपये तो सब उठ गये, व्रजनाथको कहासे दोगे?' गोरेलालने उत्तर दिया—ऐसी कौन-सी उतावली है, फिर दे देंगे?' आज दरखास्त दे दी है। कल मन्जूर हो जायगी, तीन महीनेके बाद लौटेंगे तो देखा जायगा।

व्रजनाथको ऐसा जान पड़ा मानों मुँहपर किसीने तमाचा मार दिया। क्रोध और नैराश्यसे भरे हुए बरामदेसे उतर आये। घर चले तो सीधे कदम न पड़ते थे, जैसे दिनभरका थका-माँदा पथिक।

[५]

व्रजनाथ रातभर करवटे बदलते रहे। कभी गोरेलालकी धूर्त्तापर क्रोध आता था। कभी अपनी सरलतापर क्रोध होता था। मालूम नही, किस गरीबके रुपये हैं, उसपर क्या बीती होगी। लेकिन अब क्रोध या खेदसे क्या लाभ? सोचने लगे—रुपये कहासे आवेंगे, भामा पहले ही इन्कार कर चुकी है, वेतनमें इतनी गुञ्जायश नही; दस पाँच रुपयेकी बात होती तो कोई कतर-ब्योंत तो करता। तो क्या करूँ किसीसे उधार लूँ? मगर मुझे कौन देगा? आजतक किसीसे माँगनेका सयोग नहीं पड़ा और अपना कोई ऐसा मित्र है भी तो नहीं! जो लोग हैं मुझीको सताया करते हैं, मुझे क्या देंगे। हाँ, यदि कुछ दिन कानून छोड़कर अनुवाद करनेमें परिश्रम करूँ तो रुपये मिल सकते हैं। कम-से-कम एक मासका कठिन परिश्रम है। सस्ते अनुवादकोंके

मारे दर भी तो गिर गयी। हा निर्दयी! तूने बड़ा दगा किया। न जाने किस जन्मका बैर चुकाया। कहीका न रखा!

दूसरे दिनसे ब्रजनाथको रुपयोंकी धुन सवार हुई। सवेरे कानूनके लेक्चरमे सम्मिलित होते। सन्ध्याको कचहरीसे तजवीजोंका पुलिन्दा घर लाते और आधी राततक बैठे अनुवाद किया करते। सिर उठानेकी मुहलत न मिलती। कभी एक दो भी बज जाते। जब मस्तिष्क बिलकुल शिथिल हो जाता, तब विवश होकर चारपाईपर पड़ रहते।

लेकिन इतने परिश्रमका अभ्यास न होनेके कारण कभी-कभी सिरमें दर्द होने लगता। कभी पाचन-क्रियामें विघ्न पड़ जाता, कभी ज्वर चढ आता। तिसपर भी वे मैशीनकी तरह काममें लगे रहते। भामा कभी-कभी झुँझलाकर कहती—'अजी लेट भी रहो; बड़े धर्मात्मा बने हो। तुम्हारे जैसे दस पाँच आदमी और होते तो ससारका काम ही बन्द हो जाता।' ब्रजनाथ इस बाधाकारी व्यगका कोई उत्तर न देते। दिन निकलते ही फिर वही चरखा ले बैठते।

यहाँतक कि तीन सप्ताह बीत गये और २५) हाथ आ गये। ब्रजनाथ सोचते थे, कि दो तीन दिनमें बेड़ा पार है। लेकिन इक्कीसवें दिन उन्हे प्रचण्ड ज्वर चढ आया और तीन दिनतक न उतरा। छुट्टी लेनी पडी। शय्या सेवी बन गये। भादोका महीना था। भामाने समझा कि पित्तका प्रकोप है। लेकिन जब एक सप्ताहतक डाक्टरकी औषधि सेवन करनेपर भी ज्वर न उतरा तब वह घबराई। ब्रजनाथ प्रायः ज्वरमें बकझक भी करने लगते; भामा सुनकर डरके मारे कमरेसे भाग जाती। बच्चोंको पकड़कर

दूसरे कमरेमें बन्द कर देती। अब उसे शङ्का होने लगती थी कि कहीं यह कष्ट उन्हीं रुपयोंके कारण तो नहीं भोगना पड़ रहा है। कौन जाने रुपयेवालेने कुछ कर धर दिया हो! जरूर यही बात है, नहीं तो औषधिसे लाभ क्यों नहीं होता। संकट पड़नेपर हम धर्मभीरु हो जाते हैं। भामाने भी देवताओंकी शरण ली। वह जन्माष्टमी, शिवरात्रि और तीजके सिवा और कोई व्रत न रखती थी। इस बार उसने नौरात्रका कठिन व्रत पालन करना आरम्भ किया।

आठ दिन पूरे हो गये। अन्तिम दिन आया। प्रभातका समय था। भामाने व्रजनाथको दवा पिलायी और दोनों बालकों को लेकर दुर्गाजीकी पूजा करने मन्दिरमें चली। उसका हृदय आराध्य देवीके प्रति श्रद्धासे परिपूर्ण था। मन्दिरके आंगनमें पहुँची। उपासक आसनोंपर बैठे हुए दुर्गापाठ कर रहे थे। धूप और अगरकी सुगन्धि उड़ रही थी। उसने मन्दिरमें प्रवेश किया। सामने दुर्गाकी विशाल प्रतिमा शोभायमान थी। उसके मुखारविन्दसे एक विलक्षण दीप्ति झलक रही थी। बड़े उज्ज्वल नेत्रोंसे प्रभाकी किरणें आलोकित हो रही थीं। पवित्रताका एक समाँसा छाया हुआ था। भामा इस दीप्तिपूर्ण मूर्तिके सम्मुख सीधी आँखोंसे ताक न सकी। उसके अन्तःकरणमें एक निर्मल विशुद्ध, भावपूर्ण भय उदय हो गया। उसने आँखे बन्द कर ली, घुटनोंके बल बैठ गयी और कर जोड़कर करुण स्वरमे बोली—माता! मुझपर दया करो।

उसे ऐसा ज्ञात हुआ मानो देवी मुस्कुराईं। उसे उन दिव्य नेत्रोंसे एक ज्योतिसी निकलकर अपने हृदयमें आती हुई मालूम

हुई। उसके कानोंमें देवीके मुँहसे निकले ये शब्द सुनाई दिये—'पराया धन लौटा दे, तेरा भला होगा।'

भामा उठ बैठी। उसकी आँखोंमें निर्मल भक्तिका आभास झलक रहा था। मुखमण्डलसे पवित्र प्रेम बरसा पड़ता था। देवीने कदाचित् उसे अपनी प्रभाके रङ्गमें डुबा दिया था।

इतनेमें दूसरी एक स्त्री आयी। उसके उज्ज्वल केश बिखरे और मुरझाये हुए चेहरेके दोनों ओर लटक रहे थे। शरीरपर केवल एक श्वेत साड़ी थी। हाथमें चूड़ियोंके सिवा और कोई आभूषण न था। शोक और नैराश्यकी साक्षात् मूर्त्ति मालूम होती थी। उसने भी देवीके सामने सिर झुकाया और दोनों हाथोंसे आँचल फैलाकर बोली—देवी, जिसने मेरा धन लिया हो उसका सर्वनाश करो।

जैसे सितार मिजराबकी चोट खाकर थरथरा उठता है उसी प्रकार भामाका हृदय अनिष्टके भयसे थरथरा उठा। ये शब्द तीव्र शरके समान उसके कलेजेमें चुभ गये। उसने देवीकी ओर कातर नेत्रोंसे देखा। उनका ज्योतिर्मय स्वरूप भयङ्कर था और नेत्रोंसे भीषण ज्वाला निकल रही थी। भामाके अन्त.करणमें सर्वत्र आकाशसे, मन्दिरके सामनेवाले वृक्षोंसे, मन्दिरके स्तम्भोंसे, सिंहासनके ऊपर जलते हुए दीपकसे, और देवीके विकराल मुँहसे ये शब्द निकल कर गूजने लगे—'पराया धन लौटा दे नहीं तो तेरा सर्वनाश हो जायगा।'

भामा खड़ी हो गयी और उस वृद्धासे बोली—क्यों माता! तुम्हारा धन किसीने ले लिया है?

वृद्धाने इस प्रकार उसकी ओर देखा, मानों डूबतेको तिनकेका

सहारा मिला। बोली, हाँ बेटी।

"कितने दिन हुए ?"

"कोई डेढ महीना।"

"कितने रुपये थे ?"

"पूरे एक सौ बीस।"

"कैसे खोये ?"

"क्या जाने कहीं गिर गये। मेरे स्वामी पल्टनमें नौकर थे। आज कई बरस हुए वे परलोक सिधारे। अब मुझे सरकारसे ६०) साल पेंशन मिलती है। अबकी दो सालकी पेंशन एक साथ ही मिली थी। खजानेसे रुपये लेकर आ रही थी। मालूम नहीं कब और कहाँ गिर पड़े, आठ गिन्नियाँ थीं।"

'अगर वे तुम्हें मिल जायँ तो क्या दोगी ?'

"अधिक नहीं उनमेंसे ४०) रुपये दे दूँगी।

"रुपये क्या होंगे, कोई उससे अच्छी चीज दो।"

"बेटी ! और क्या दूँ, जबतक जीऊँगी तुम्हारा यश गाऊँगी।"

'नहीं, इसकी मुझे आवश्यकता नहीं।"

"बेटी इसके सिवा मेरे पास क्या है ?"

"मुझे आशीर्वाद दो। मेरे पति बीमार हैं वे अच्छे हो जायँ।"

"क्या उन्हीको रुपये मिले हैं ?"

"हाँ, वे उसी दिनसे तुम्हें खोज रहे हैं।"

"वृद्धा घुटनोंके बल बैठ गयी और आँचल फैलाकर कम्पित स्वरसे बोली—देवी, इनका कल्याण करो।

भामाने फिर देवीकी ओर आशङ्कित दृष्टिसे देखा। उनके

दिव्य रूपपर प्रेमका प्रकाश था। आँखोंमें दयाकी आनन्ददायिनी झलक थी। उस समय भामाके अन्तःकरणमें कहीं स्वर्गलोकसे यह ध्वनि सुनाई दी—जा तेरा कल्याण होगा।

[६]

सन्ध्याका समय है। भामा ब्रजनाथके साथ इक्केपर बैठ तुलसीके घर उसकी थाती लौटाने जा रही है। ब्रजनाथके बड़े परिश्रमकी कमाई तो डाक्टरकी भेंट हो चुकी है, लेकिन भामाने एक पड़ोसिके हाथ अपने कानोंके झूमके बेचकर रुपये जुटाये हैं। जिस समय झूमके बनकर आये थे, भामा बहुत प्रसन्न हुई थी। आज उन्हें बेचकर वह उससे भी अधिक प्रसन्न है।

जब ब्रजनाथने आठो गिनियाँ उसे दिखायी थी, उसके हृदयमे एक गुदगुदी सी हुई थी। लेकिन यह हर्ष मुखपर आनेका साहस न कर सका था। आज उन गिन्नियोंको हाथसे जाते समय उसका हार्दिक आनन्द आँखोमें चमक रहा है, ओठोंपर नाच रहा है, कपोलोंको रग रहा है और अङ्गोपर किलोले कर रहा है। वह इन्द्रियोंका आनन्द था, यह आत्माका आनन्द है। वह आनन्द लज्जाके भीतर छिपा हुआ था, यह आनान्द गर्वसे बाहर निकला पड़ता है।

तुलसीका आशीर्वाद सफल हुआ। आज पूरे तीन सप्ताहके बाद ब्रजनाथ तकियेके सहारे बैठे थे। वे बार बार भामाको प्रेमपूर्ण नेत्रोंसे देखते थे। वह आज उन्हें देवी मालूम होती थी। अबतक उन्होने उसके वाह्य सौन्दर्यकी शोभा देखी थी। आज वह उसका आत्मिक सौन्दर्य देख रहे हैं।

तुलसीका घर एक गलीमे था। इक्का सड़कपर जाकर ठहर गया। ब्रजनाथ इक्केपरसे उतरे और अपनी छड़ी टेकते हुए भामा के हाथोंके सहारे तुलसीके घर पहुँचे। तुलसीने रुपये लिये और दोनों हाथ फैलाकर आशीर्वाद दिया—दुर्गाजी तुम्हारा कल्याण करें!

तुलसीका वर्णहीन मुख यों खिल गया जैसे वर्षाके पीछे वृक्षोंकी पत्तियाँ खिल जाती हैं, सिमटा हुआ अङ्ग फैल गया, गालोकी झुर्रियाँ मिटती देख पड़ी। ऐसा मालूम होता था, मानों उसका कायाकल्प हो गया।

वहाँसे आकर ब्रजनाथ अपने द्वारपर बैठे हुए थे कि गोरे-लाल आकर बैठ गये। ब्रजनाथने मुँह फेर लिया।

गोरेलाल बोले—भाई साहब, कैसी तबियत है?

ब्रजनाथ—बहुत अच्छी तरह हूँ।

गोरेलाल—मुझे क्षमा कीजियेगा। मुझे इसका बहुत खेद है कि आपके रुपये देनेमें इतना विलम्ब हुआ। पहली तारीखको घरसे एक आवश्यक पत्र आ गया और मै किसी तरह तीन महीनेकी छुट्टी लेकर घर भागा। वहाँकी विपत्ति-कथा कहूँ तो समाप्त न हो। लेकिन आपकी बीमारीका शोक समाचार सुनकर आज भागा चला आ रहा हूँ। ये लीजिये रुपये हाजिर हैं। इस विलम्बके लिये अत्यन्त लज्जित हूँ।

ब्रजनाथका क्रोध शान्त हो गया। विनयमें कितनी शक्ति है! बोले—जी हाँ, बीमार तो था, लेकिन अब अच्छा हो गया हूँ। आपको मेरे कारण व्यर्थ कष्ट उठाना पड़ा। यदि इस समय आपको असुविधा हो तो रुपये फिर दे दीजियेगा। मैं अब ऊऋण हो गया हूँ। कोई जल्दी नहीं है।

गोरेलाल बिदा हो गये तो ब्रजनाथ रुपया लिये हुए भीतर आये और भामासे बोले—ये लो अपने रुपये, गोरेलाल दे गये।

भामाने कहा—ये मेरे नहीं हैं तुलसीके हैं, एक बार पराया धन लेकर सीख गयी।

'लेकिन तुलसीके तो पूरे रुपये दे दिये गये ?'

'दे दिये गये तो क्या हुआ, ये उसके आशीर्वादकी न्यौछावर है।'

'कानके झूमक कहाँसे आवेंगे ?'

'झूमक न रहेंगे न सही, सदाके लिए कान तो हो गया।'

सेवा-मार्ग—

[१]

ताराने १२ वर्ष दुर्गाकी तपस्या की। न पलङ्गपर सोयी न केशोंको सँवारा और न नेत्रोंमें सुर्मा लगाया। पृथ्वीपर सोती, गेरुआ वस्त्र पहनती और रूखी रोटियाँ खाती। उसका मुख मुरझाई हुई कलीकी भाँति था, नेत्र ज्योतिहीन और हृदय एक शून्य बीहड़ मैदान। उसे केवल यही लौ लगी थी कि दुर्गाके दर्शन पाऊँ। शरीर मोमबत्तीकी तरह घुलता था, पर यह लौ

दिलसे नहीं जाती थी। यही उसकी इच्छा थी, यही उसका जीवनोद्देश्य। घरके लोग उसे पागल कहते। माता समझाती—'बेटी तुझे क्या हो गया है? क्या तू सारा जीवन रो रोकर काटेगी? इस समयके देवता पत्थरसे होते हैं। पत्थरको भी कभी किसीने पिघलते देखा है? देख, तेरी सखियाँ पुष्पकी भांति विकसित हो रही हैं, नदीकी तरह बढ़ रही हैं; क्या तुझे मुझपर दया नहीं आती?' तारा कहती माता—'अब तो जो लगन लगी, वह लगी। या तो देवीके दर्शन पाऊँगी, या यही इच्छा लिये हुए संसारसे पयान कर जाऊँगी। तुम समझ लो मैं मर गयी।'

इस प्रकार पूरे बारह वर्ष व्यतीत हो गये और तब देवी प्रसन्न हुईं। रात्रिका समय था। चारो ओर सन्नाटा छाया हुआ था। मन्दिरमें एक धुँधलासा घीका दीपक जल रहा था। तारा दुर्गाके पैरोंपर माथा नवाये सच्ची भक्तिका परिचय दे रही थी। यकायक उस पाषाणमूर्त्तिदेवीके तनमें स्फूर्ति प्रकट हुई। ताराके रोंगटे खड़े हो गये। वह धुँधला दीपक देदीप्यमान हो गया। मन्दिरमे चित्ताकर्षक सुगन्धि फैल गयी और वायुमें सजीवता प्रतीत होने लगी। देवीका उज्ज्वल रूप पूर्ण चन्द्रमाकी भांति चमकने लगा। ज्योतिहीन नेत्र जगमगा उठे। होंठ खुल गये। आवाज आयी—तारा, मैं तुझसे प्रसन्न हूँ, माँग, क्या वर माँगती है?

तारा खड़ी हो गयी। उसका शरीर इस भांति काँप रहा था, जैसे प्रातःकालके समय कम्पित स्वरमें किसी कृषकके गानेकी ध्वनि। उसे मालूम हो रहा था मानों वह वायुमें उड़ी जा रही है। उसे अपने हृदयमें उच्च विचार और पूर्ण प्रकाशका आभास

प्रतीत हो रहा था। उसने दोनों हाथ जोड़कर भक्ति-भावसे कहा—भगवती, तुमने मेरी १२ वर्षकी तपस्या पूरी की, किस मुखसे तुम्हारा गुणानुवाद गाऊँ। मुझे संसारकी वे अलभ्य वस्तुयें प्रदान हों, जो इच्छाओंकी सीमा और मेरी अभिलाषाओंका अन्त है। मै वह ऐश्वर्य चाहती हूँ जो सूर्यको भी मात कर दे।

देवीने मुस्कराकर कहा—स्वीकृत है।

तारा—वह धन जो कालचक्रको भी लज्जित करे।

देवीने मुस्कराकर कहा—स्वीकृत है।

तारा—वह सौन्दर्य जो अद्वितीय हो।

देवीने मुस्कराकर कहा—यह भी स्वीकृत है।

[२]

तारा कुँवरिने शेष रात्रि जागकर व्यतीत की। प्रभातकाल-के समय उसकी आँखें क्षणभरके लिये झपक गयी। जागी तो देखा कि मै सिरसे पाँवतक हीरे व जवाहिरोंसे लदी हूँ। उसके विशाल भवनके कलश आकाशसे बातें कर रहे थे। सारा भवन सङ्गमरमरसे बना हुआ, अमूल्य पत्थरोंसे जड़ा हुआ था। द्वारपर नौबत बज रही थी। उसके आनन्ददायक सुहावने शब्द आकाश-में गूँज रहे थे। द्वारपर मीलोंतक हरियाली छाई हुई थी। दासियाँ स्वर्णाभूषणोंसे लदी हुई सुनहरे कपडे पहने हुए चारों ओर दौड़ती थीं। ताराको देखते ही वे स्वर्णके लोटे और कटोरे लेकर दौड़ीं। ताराने देखा कि मेरा पलङ्ग हाथी दाँतका है। भूमिपर बड़े कोमल बिछौने बिछे हुए हैं। सिरहानेकी ओर एक बड़ा सुन्दर ऊँचा शीशा रखा हुआ है। ताराने उसमें अपना रूप

देखा, चकित रह गयी। उसका रूप चन्द्रमाकोभी लज्जित करता था। दीवारपर अनेकानेक सुप्रसिद्ध चित्रकारोंके मनमोहक चित्र टँगे थे। पर ये सब के-सब ताराकी सुन्दरताके आगे तुच्छ थे। ताराको अपनी सुन्दरताका गर्व हुआ। वह कई दासियोंको लेकर वाटिकामें गयी। वहाँकी छटा देखकर वह मुग्ध हो गयी। वायुमें गुलाब और केसर घुले हुए थे, रङ्ग-विरङ्गके पुष्प, वायुके मन्द मन्द झोंकोंसे मतवालोंकी तरह झूम रहे थे। ताराने एक गुलाबका फूल तोड़ लिया और उसके रङ्ग और कोमलता-की अपने अधर पल्लवसे समानता करने लगी। गुलाबमें वह कोमलता न थी। वाटिकाके मध्यमें एक बिल्लौरजटित हौज था। इसमें हंस और बत्तख किलोलें कर रहे थे। यकायक ताराको ध्यान आया, मेरे घरके लोग कहाँ हैं। दासियोंसे पूछा। उन्होंने कहा—'वे लोग पुराने घरमें हैं।' ताराने अपनी अटारी-पर जाकर देखा। उसे अपना पहला घर एक साधारण झोंपड़े-की तरह दृष्टिगोचर हुआ। उसकी बहिनें उसकी साधारण दासियोंके समान भी न थीं। माँको देखा, वह आँगनमें बैठी चरखा कात रही थीं। तारा पहले सोचा करती थी कि जब मेरे दिन चमकेंगे तब मैं इन लोगोंको भी अपने साथ रक्खूँगी और उनकी भलीभाति सेवा करूँगी। पर, इस समय धनके गर्वने उसकी पवित्र हार्दिक इच्छाको निर्बल बना दिया था। उसने घरवालोंको स्नेहरहित दृष्टिसे देखा और तब वह उन मनोहर गानको सुनने चली गयी जिसकी प्रतिध्वनि उसके कानोंमें आ रही थी।

एक बारगी जोरसे एक कड़का हुआ, बिजली चमकी और

बिजलीकी छटाओंसे एक ज्योतिस्वरूप नवयुवक निकलकर ताराके सामने नम्रतासे खड़ा हो गया। ताराने पूछा, तुम कौन हो?

नवयुवकने कहा—श्रीमती, मुझे विद्युतसिंह कहते हैं। मैं श्रीमतीका आज्ञाकारी सेवक हूँ।

उसके बिदा होते ही वायुके उष्ण झोके चलने लगे। आकाशमें एक प्रकाश दृष्टिगोचर हुआ। वह क्षणमात्रमें उतरकर ताराकुँवरिके समीप ठहर गया। उसमेंसे एक ज्वालारूपी मनुष्यने निकलकर ताराके पदोंको चूमा। ताराने पूछा—तुम कौन हो?

उस मनुष्यने उत्तर दिया—श्रीमती, मेरा नाम अग्निसिंह। मै श्रीमतीका आज्ञाकारी हूँ।

वह अभी जाने भी न पाया था कि एकबारगी सारा महल ज्योतिसे प्रकाशमान हो गया। जान पड़ता था, सैकड़ो बिजलियाँ मिलकर चमक रही हैं। वायु सवेग हो गयी। एक जगमगाता हुआ सिंहासन आकाशपर दीख पड़ा। वह शीघ्रतासे पृथ्वीकी ओर चला और ताराकुँवरिके पास आकर ठहर गया। उससे एक प्रकाशमय रूपका बालक, जिसके रूपसे गम्भीरता प्रकट होती थी, निकलकर ताराके सामने निष्ठाभावसे खड़ा हो गया। ताराने पूछा—तुम कौन हो?

बालकने उत्तर दिया—श्रीमती! मुझे मिस्टर रेडियम कहते हैं। मैं श्रीमतीका आज्ञापालक हूँ।

[३]

धनी लोग ताराके भयसे थर्राने लगे। उसके आश्चर्यजनक सौन्दर्यने संसारको चकित कर दिया। बड़े-बड़े महीपति उसकी

चौखटपर माथा रगड़ने लगे। जिसकी ओर उसकी कृपा दृष्टि हो जाती, वह अपना अहोभाग्य समझता। सदैवके लिये उसका बेदामका गुलाम बन जाता।

एक दिन तारा अपनी आनन्द वाटिकामें टहल रही थी। अचानक किसीके गानेका मनोहर शब्द सुनाई दिया। तारा विक्षिप्त हो गयी। उसके दरबारमें संसारके अच्छे-अच्छे गवैये मौजूद थे, पर वह चित्ताकर्षकता, जो इन सुरोंमें थी, कभी अवगत न हुई थी। ताराने गायकको बुला भेजा।

एक क्षणके अनन्तर वाटिकामें एक साधु आया, सिरपर जटायें शरीरमें भस्म रमाये। उसके साथ एक टूटा हुआ बीन था। उसीसे वह प्रभावशाली स्वर निकलता था जो हृदयके अनुरक्त स्वरोंसे कहीं प्रिय था। साधु आकर हौजके किनारे बैठ गया। उसने ताराके सामने शिष्टभाव नहीं दिखाया। आश्चर्यसे इधर-उधर दृष्टि नहीं डाली। उस रमणीय स्थानपर वह अपना सुरअलापने लगा। ताराका चित्त विचलित हो उठा। दिलमें अपार अनुरागका सञ्चार हुआ। मदमत्त होकर टहलने लगी। साधुके सुमनोहर मधुर अलापसे पक्षी मग्न हो गये। पानीमें लहरें उठने लगीं। वृक्ष झूमने लगे। ताराने उन चित्ताकर्षक सुरोंसे एक चित्र खिंचते हुए देखा। धीरे धीरे चित्र प्रकट होने लगा। उसमें स्फूर्त्ति आयी। और तब, वह खड़ी होकर नृत्य करने लगी। तारा चौंक पड़ी। उसने देखा कि यह मेरा ही चित्र है। नहीं, मैं ही हूँ। मैं ही बीनकी तानपर नृत्य कर रही हूँ। उसे आश्चर्य हुआ कि मैं संसारकी अलभ्य वस्तुओंकी रानी हूँ अथवा एक स्वर-चित्र! वह सिर धुनने लगी और मतवाली होकर

साधुके पैरोंसे जा लगी। उसकी दृष्टिमें एक आश्चर्यजनक परिवर्त्तन हो गया। सामनेके फले-फूले वृक्ष और तरंगें मारता हुआ हौज, और मनोहर कुञ्ज सब लोप हो गये। केवल वही साधु बैठा बीन बजा रहा था, और वह स्वय उसकी तालोंपर थिरक रही थी। वह साधु अब प्रकाशमय तारा और अलौकिक सौन्दर्यकी मूर्त्ति बन गया था। जब मधुर अलाप बन्द हुआ तब तारा होशमें आयी। उसका चित्त हाथसे जा चुका था। वह उस विलक्षण साधुके हाथों बिक चुकी थी।

तारा बोली—स्वामीजी! यह महल, यह धन, यह सुख और सौन्दर्य सब आपके चरण-कमलपर निछावर है। इस अन्धेरे महलको अपने कोमल चरणोंसे प्रकाशमान कीजिये।

साधु—साधुओंको महल और धनका क्या काम? मैं इस घरमें नहीं ठहर सकता।

तारा—संसारके सारे सुख आपके लिये उपस्थित हैं।

साधु—मुझे सुखोंकी कामना नही।

तारा—मैं आजोवन आपकी दासी रहूँगी। यह-कहकर ताराने आइनेमें अपने अलौकिक सौन्दर्यकी छटा देखी और उसके नेत्रोंमें चञ्चलता आ गयी।

साधु—नही तारा कुँवरि, मैं इस योग्य नहीं हूँ। यह कहकर साधुने बीन उठाया और द्वारकी ओर चला। ताराका गर्व टूक-टूक हो गया। लज्जासे सिर झुक गया। वह मूर्च्छित होकर भूमिपर गिर पड़ी। मनमें सोचा—मैं धनमें, ऐश्वर्य्यमें, सौन्दर्यमें जो अपनी समता नही रखती, एक साधुकी दृष्टिमें इतनी तुच्छ!!

[४]

तारको अब किसी प्रकार चैन नहीं था। उसे अपना भवन और ऐश्वर्य भयानक मालूम होने लगा। बस, साधुका एक चन्द्रस्वरूप उसकी आँखोंमे नाच रहा था और उसका स्वर्गीय गान कानोंमें गूँज रहा था। उसने अपने गुप्तचरोंको बुलाया और साधुका पता लगानेकी आज्ञा दी। बहुत छानबीनके पश्चात् उसकी कुटीका पता लगा। तारा नित्यप्रति वायुयानपर बैठकर साधुके पास जाती; कभी उसपर लाल, जवाहिर लुटाती, कभी रत्न और आभूषणकी छटा दिखाती। पर साधु इससे तनिक भी विचलित न हुआ। ताराके मायाजालका उसपर कुछ भी असर न हुआ।

तब, ताराकुँवरि फिर दुर्गाके मन्दिरमें गयी और देवीके चरणोंपर सिर रखकर बोली—माता, तुमने मुझे संसारके सारे दुर्लभ पदार्थ प्रदान किये। मैंने समझा था कि ऐश्वर्य्यमे ससार-को दास बना लेनेकी शक्ति है, पर मुझे अब ज्ञात हुआ कि प्रेमपर ऐश्वर्य्य, सौन्दर्य और वैभवका कुछ भी अधिकार नहीं। अब एक बार मुझपर फिर वही कृपादृष्टि हो। कुछ ऐसा कीजिये कि जिस निष्ठुरके प्रेममें मैं मरी जा रही हूँ उसे भी मुझे देखे बिना चैन न आवे। उसकी आँखोंमें भी नींद हराम हो जाय, वह भी मेरे प्रेम-मदमें चूर हो जाय।

देवीके होंठ खुले, वह मुस्कराई। उसके अधर पल्लव विक-सित हुए। बोली सुनाई दी—तारा, मैं ससारके सारे पदार्थ प्रदान कर सकती हूँ, पर स्वर्ग-सुख मेरी शक्तिसे बाहर है। 'प्रेम' स्वर्ग सुखका मूल है।

तारा--माता, संसारके सारे ऐश्वर्य मुझे जंजाल जान पडते हैं। बताइये, मैं अपने प्रीतमको कैसे पाऊँगी ?

देवी—उसका एक ही मार्ग है, पर है वह बहुत कठिन। भला, तुम उसपर चल सकोगी ?

तारा—वह कितना ही कठिन हो, मैं उस मार्गका अवलम्बन अवश्य करूँगी।

देवी—अच्छा, तो सुनो वह सेवा मार्ग है। सेवा करो, प्रेम सेवाहीसे मिल सकता है।

[५]

ताराने अपने बहुमूल्य जड़ाऊ आभूषणों और रंगीन वस्त्रोंको उतार दिया। दासियोंसे बिदा हुई। राजभवनको त्याग दिया। अकेले नंगे पैर साधुकी कुटीमें चली आयी और सेवामार्गका अवलम्बन किया।

वह कुछ रात रहे उठती। कुटीमे झाड़ू देती। साधुके लिये गङ्गासे जल लाती। जंगलोंसे पुष्प चुनती। साधु नींदमें होते तो वह उन्हें पंखा झलती। जङ्गली फल तोड लाती और केलेके पत्तल बनाकर साधुके सम्मुख रखती। साधु नदीमें स्नान करने जाया करते थे। तारा रास्तेसे कंकर चुनती। उसने कुटीके चारों ओर पुष्प लगाये। गङ्गासे पानी लाकर सींचती। उन्हे हरा भरा देखकर प्रसन्न होती। उसने मदारकी रूई बटोरी, साधुके लिये नर्म गद्दे तैयार किये। अब और कोई कामना न थी! सेवा स्वयं अपना पुरस्कार और फल थी।

ताराको कई-कई दिन उपवास करना पड़ता। हाथोंमें गट्टे

पड़ गये। पैर कांटोंसे चलनी हो गये। धूपसे कोमल गात मुरझा गया। गुलाब-सा बदन सूख गया, पर उसके हृदयमें अब स्वार्थ और गर्वका शासन न था। वहाँ अब प्रेमका राज था; वहाँ अब उस सेवाकी लगन थी—जिससे कलुषताकी जगह आनन्दका स्रोत बहता है और काँटे पुष्प बन जाते हैं; जहाँ अश्रु-धाराकी जगह नेत्रोंसे अमृत-जलकी वर्षा होती और दुःख विलापकी जगह आनन्दके राग निकलते हैं, जहाँके पत्थर रूईसे ज्यादा कोमल हैं और शीतल वायुसे भी मनोहर। तारा भूल गयी कि मैं सौन्दर्यमें अद्वितीय हूँ। धन विलासिनी तारा अब केवल प्रेमकी दासी थी।

साधुको वनके खगों और मृगोंसे प्रेम था। वे कुटीके पास एकत्रित हो जाते। तारा उन्हें पानी पिलाती, दाने चुगाती, गोदमें लेकर उनका दुलार करती। विषधर साप और भयानक जन्तु उसके प्रेमके प्रभावसे उसके सेवक हो गये।

बहुधा रोगी मनुष्य साधुके पास आशीर्वाद लेने आते थे। तारा रोगियोंकी सेवा, सुश्रूषा करती, जंगलसे जड़ी-बूटियाँ ढूँढ़ लाती, उनके लिये औषधि बनाती, उनके घाव धोती, घावोंपर मरहम रखती, रात-रातभर बैठी उन्हें पंखा झलती। साधुके आशीर्वादको उसकी सेवा प्रभावयुक्त बना देती थी।

इस प्रकार कितने ही वर्ष बीत गये। गर्मीके दिन थे, पृथ्वी तवेकी तरह जल रही थी। हरे-भरे वृक्ष सूखे जाते थे। गंगा गर्मीसे सिमट गयी थी। ताराको पानी लेनेके लिये बहुत दूर रेतमें चलना पड़ता। उसका कोमल अङ्ग चूर-चूर हो जाता। जलती हुई रेतमें तलवे भुन जाते। इसी दशामें एक दिन वह हताश

होकर एक वृक्षके नीचे क्षणभर दम लेनेके लिये बैठ गयी। उसके नेत्र बन्द हो गये। उसने देखा, देवी मेरे सम्मुख खड़ी, कृपा दृष्टिसे, मुझे देख रही है। ताराने दौड़कर उनके पदोंको चूमा।

देवीने पूछा—तारा, तेरी अभिलाषा पूरी हुई ?

तारा—हाँ माता, मेरी अभिलाषा पूरी हुई।

देवी—तुझे प्रेम मिल गया ?

तारा—नहीं माता, मुझे उससे भी उत्तम पदार्थ मिल गया। मुझे प्रेमके हीरेके बदले सेवाका पारस मिल गया। मुझे ज्ञात हुआ है कि प्रेम सेवाका चाकर है। सेवाके सामने सिर झुकाकर अब मैं प्रेम-भिक्षा नही चाहती। अब मुझे किसी दूसरे सुखकी अभिलाषा नहीं। सेवाने मुझे प्रेम, आदर, सुख, सबसे निवृत्त कर दिया।

देवी इस बार मुस्कराई नही। उसने ताराको हृदयसे लगाया और दृष्टिसे ओझल हो गयी।

[६]

संध्याका समय था। आकाशमें तारे ऐसे चमकते थे जैसे कमलपर पानीकी बूँदें। वायुमें चित्ताकर्षक शीतलता आ गयी थी। तारा एक वृक्षके नीचे खड़ी चिड़ियोंको दाना चुगाती थी, कि यकायक साधुने आकर उसके चरणोंपर सिर झुकाया और बोला—तारा, तुमने मुझे जीत लिया। तुम्हारा ऐश्वर्य, धन और सौन्दर्य जो कुछ न कर सका, वह तुम्हारी सेवाने कर दिखाया। तुमने मुझे अपने प्रेममें आसक्त कर लिया। अब मैं तुम्हारा दास हूँ। बोलो, तुम मुझसे क्या चाहती हो ? तुम्हारे संकेतपर अब-

मैं अपना योग और वैराग्य सब कुछ न्यौछावर कर देनेके लिये प्रस्तुत हूँ।

तारा—स्वामीजी! मुझे अब कोई इच्छा नहीं। मै केवल सेवाकी आज्ञा चाहती हूँ।

साधु—मैं दिखा दूँगा कि ऐसे योग साधकर भी मनुष्यका हृदय निर्जीव नहीं होता। मैं भॅवरेके सदृश तुम्हारे सौन्दर्यपर मंडराऊँगा। पपीहेकी तरह तुम्हारे प्रेमकी रट लगाऊँगा। हम दोनों प्रेमकी नौकापर ऐश्वर्य्य और वैभव नदीकी सैर करेंगे, प्रेम-कुञ्जोंमें बैठकर प्रेमचर्चा करेंगे और आनन्दके मनोहर राग गावेंगे।

ताराने कहा—स्वामीजी सेवामार्गपर चलकर मैं अब अभिलाषाओंसे पूरी हो गयी। अब हृदयमें और कोई इच्छा शेष नहीं है।

साधुने इन शब्दोंको सुना, ताराके चरणोंपर माथा नवाया और गंगाकी ओर चल दिया।

———

शिकारी राजकुमार--

[१]

मईका महीना और मध्याह्नका समय था। सूर्य्यकी आँखें सामनेसे हटकर सिरपर जा पहुँची थीं। इसलिये उनमें शील न

था। ऐसा विदित होता था मानों पृथ्वी उनके भयसे थर-थर काँप रही थी। ठीक ऐसे ही समय एक मनुष्य एक हिरनके पीछे उन्मत्त भावसे घोड़ा फेंके चला आता था। उसका मुँह लाल हो रहा था और घोडा पसीनेसे लथ-पथ। किन्तु मृग भी ऐसा भागता था मानों वायुवेगसे जा रहा था। ऐसा प्रतीत होता था कि उसके पद भूमिको स्पर्श नही करते। इसी दौड़की जीत-हारपर उसका जीवन निर्भर था।

पछुआ हवा बड़े जोरसे चल रही थी। ऐसा जान पड़ता था मानों अग्नि ओर धूलकी वर्षा हो रही हो। घोड़ेके नेत्र रक्त-वर्ण हो रहे थे और आश्वारोहीके सारे शरीरका रुधिर उबल सा रहा था। किन्तु, मृगका भागना उसे इस बातका अवसर न देता था कि वह अपनी बन्दूकको सम्हाले। कितने ही ऊखके खेत, ढाकके बन और पहाड़ सामने पड़े और तुरन्त ही सपनेकी सम्पत्ति-की भाँति अदृश्य हो गये।

क्रमशः मृग और अश्वारोहीके बीच अधिक अन्तर होता जाता था कि अचानक मृग पीछेकी ओर मुड़ा। सामने एक नदीका बड़ा ही ऊँचा करारा दीवारकी भाँति खड़ा था। आगे भागनेकी राह बन्द थी और उसपरसे कूदना मानो मृत्युके मुखमें कूदना था। हिरनका शरीर शिथिल पड़ गया। उसने एक करुणा-भरी दृष्टि चारो ओर फेरी। किन्तु, उसे हर तरफ मृत्यु ही मृत्यु दृष्टिगोचर होती थी। आश्वारोहीके लिए इतना समय बहुत था। उसकी बन्दूकसे गोली क्या छूटी मानों मृत्युने एक महा भयंकर जय ध्वनिके साथ अग्निकी एक प्रचण्ड ज्वाला उगल दी। हिरन भूमिपर लोट गया।

[२]

मृग पृथ्वीपर पड़ा तड़प रहा था और अश्वारोहीकी भयङ्कर और हिंसाप्रिय आँखोंसे प्रसन्नताकी ज्योति निकल रही थी। ऐसा जान पड़ता था कि उसने असाध्य साधन कर लिया। उसने उस पशुके शवको नापनेके बाद उसके सींगोंको बड़े ध्यानसे देखा और मन ही मन प्रसन्न हो रहा था कि इससे कमरेकी सजावट दूनी हो जायगी और नेत्र सर्वदा उस सजावटका आनन्द सुखसे भोगेंगे।

जबतक वह इस ध्यानमें मग्न था, उसको सूर्य्यकी प्रचण्ड किरणोंका लेशमात्र भी ध्यान न था, किन्तु ज्योंही उसका ध्यान उधर फिरा वह उष्णतासे विह्वल हो उठा और करुणापूर्ण आँखें नदीकी ओर डालीं, लेकिन वहाँतक पहुँचनेका कोई भी मार्ग न देख पड़ा और न कोई वृक्ष ही देख पड़ा, जिसकी छाँहमें वह जरा विश्राम करता।

इसी चिन्तावस्थामें एक अति दीर्घकाय पुरुष नीचेसे उछल-कर करारेके ऊपर आया और अश्वारोहीके सम्मुख खड़ा हो गया। अश्वारोही उसको देखकर बहुत ही अचम्भित हुआ। नवागन्तुक एक बहुत ही सुन्दर और हृष्ट-पुष्ट मनुष्य था। मुखके भाव उसके हृदयकी स्वच्छता और चरित्रकी निर्मलताका पता देते थे। वह बहुत ही दृढ-प्रतिज्ञ, आशा निराशा तथा भयसे बिल्कुल बेपरवाह सा जान पड़ता था।

मृगको देखकर उस सन्यासीने बड़े स्वाधीनभावसे कहा— राजकुमार, तुम्हें आज बहुत ही अच्छा शिकार हाथ लगा। इतना बड़ा मृग इस सीमामें कदाचित् ही दिखाई पड़ता है।

राजकुमारके अचम्भेकी सीमा न रही, उसने देखा कि साधु उसे पहचानता है।

राजकुमार बोला—जी हाँ। मैं भी यही खयाल करता हूँ। मैंने भी आजतक इतना बड़ा हिरन नहीं देखा। लेकिन इसके पीछे मुझे आज बहुत हैरान होना पड़ा।

सन्यासीने दयापूर्वक कहा—निःसन्देह तुम्हें दुःख उठाना पड़ा होगा। तुम्हारा मुख लाल हो रहा है और घोड़ा भी बेदम हो गया है। क्या तुम्हारे सङ्गी बहुत पीछे रह गये ?

इसका उत्तर राजकुमारने बिल्कुल बे परवाहीसे दिया, मानों उसे इसकी कुछ भी चिन्ता न थी !

संन्यासीने कहा—यहाँ ऐसी कड़ी धूप और आँधीमें खड़े तुम कबतक उनकी राह देखोगे ? मेरी कुटीमें चलकर जरा विश्राम कर लो। तुन्हें परमात्माने ऐश्वर्य दिया है, लेकिन कुछ देरके लिये संन्यासाश्रमका रङ्ग भी देखो और वनस्पतियों और नदीके शीतल जलका स्वाद लो।

यह कहकर संन्यासीने उस मृगके रक्तमय मृत शरीरको ऐसी सुगमतासे उठाकर कन्धेपर धर लिया मानों वह एक घासका गट्ठा था और राजकुमारसे कहा—मैं तो प्रायः करारसे ही नीचे उतर जाया करता हूँ। किन्तु तुम्हारा घोड़ा सम्भव है न उतर सके। अतएव 'एक दिनकी राह छोड़कर ६ मासकी राह' चलेंगे। घाट यहासे थोड़ी ही दूर है और वही मेरी कुटी है।

राजकुमार संन्यासीके पीछे चला। उसे संन्यासीके शारीरिक बलपर अचम्भा हो रहा था। आध घण्टेतक दोनों चुप चाप चलते रहे। इसके बाद ढालू भूमि मिलनी शुरू हुई और थोड़ी-

ही देरमें घाट आ पहुँचा। वहीं कदम्ब-कुञ्जकी घनी छायामें जहाँ सर्वदा मृगोंकी सभा सुशोभित रहती, नदीकी तरङ्गोंका मधुर स्वर सर्वदा सुनाई दिया करता है, जहाँ हरियालीपर मयूर थिरकते, कपोतादि पक्षी मस्त होकर झूमते, लता द्रुमादिसे सुशोभित संन्यासीकी एक छोटी सी कुटी थी।

[३]

संन्यासकीकी कुटी हरे-भरे वृक्षोंके नीचे सरलता और सतोषका चित्र बन रही थी। राजकुमारकी अवस्था वहाँ पहुँचते ही बदल गयी। वहाँ शीतल वायुका प्रभाव उसपर ऐसा पड़ा जैसा मुरझाते हुए वृक्षपर वर्षाका। उसे आज विदित हुआ कि तृप्ति कुछ स्वादिष्ट व्यञ्जनोंहीपर निर्भर नहीं है और न निद्रा सुनहरे तकियोंकी ही आवश्यकता रखती है।

शीतल, मन्द, सुगन्ध वायु चल रही थी। सूर्य्य भगवान अस्ताचलको पयान करते हुए इस लोकको तृषित नेत्रोंसे देखते जाते थे और संन्यासी एक वृक्षके नीचे बैठा हुआ गा रहा था—

'ऊधो कर्मन की गति न्यारी'

राजकुमारके कानोंमें स्वरकी भनक पड़ी, उठ बैठा और सुनने लगा। उसने बडे बड़े कलावन्तोंके गाने सुने थे, किन्तु आज जैसा आनन्द उसे कभी प्राप्त नहीं हुआ था। इस पदने उसके ऊपर मानों मोहनीमन्त्रका जाल बिछा दिया। वह बिल्कुल बेसुध हो गया। सन्यासीकी ध्वनिमे कोयलकी कूक सरीखी मधुरता थी।

सम्मुख नदीका जल गुलाबी चादरकी भाति प्रतीत होता

था। कूलद्वयकी रेत चन्दनकी चौकी-सी दीखती थी। राजकुमार को यह दृश्य स्वर्गीय-सा जान पड़ने लगा। उसपर तैरनेवाले जल-जन्तु ज्योतिर्मय आत्माके सदृश देख पड़ते थे, जो गानेका आनन्द उठाकर मत्तसे हो गये।

जब गाना समाप्त हो गया, राजकुमार जाकर सन्यासीके सामने बैठ गया और भक्ति-पूर्वक बोला—महात्मन्, आपका प्रेम और वैराग्य सराहनीय है। मेरे हृदयपर इसका जो प्रभाव पड़ा है वह चिरस्थायी रहेगा। यद्यपि सम्मुख प्रशंसा करना सर्वथा अनुचित है, किन्तु इतना मैं अवश्य कहूँगा कि आपके प्रेमकी गम्भीरता सराहनीय है। यदि मैं गृहस्थीके बन्धनमें न पड़ा होता तो आपके चरणोंसे पृथक् होनेका ध्यान स्वप्नमें भी न करता।

इसी अनुरागावस्थामे राजकुमार कितनी ही बातें कह गया, जो कि स्पष्ट रूपसे उसके आन्तरिक भावोंका विरोध करती थीं। संन्यासी मुस्कराकर बोला—तुम्हारी बातोंसे मै बहुत प्रसन्न हूँ और मेरी उत्कट इच्छा है कि तुमको कुछ देर ठहराऊँ, किन्तु यदि मैं जाने भी दूँ तो इस सूर्य्यास्तके समय तुम जा नहीं सकते। तुम्हारा रीवा पहुँचना दुष्कर हो जायगा। तुम जैसे आखेटप्रिय हो वैसा ही मैं भी हूँ। हम दोनोंको अपने-अपने गुण दिखाने का अच्छा अवसर प्राप्त हुआ है। कदाचित् तुम भयसे न रुकते, किन्तु शिकारके लालचसे अवश्य रहोगे।

राजकुमारको तुरन्त ही मालूम हो गया कि जो बाते उन्होंने अभी-अभी संन्यासीसे कही थीं वे बिल्कुल ही ऊपरी और दिखावे की थीं और हार्दिक भाव उनसे प्रकट नहीं हुए थे। आजन्म संन्यासीके समीप रहना तो दूर, वहाँ एक रात बिताना उसको

कठिन जान पड़ने लगा। घरवाले उद्विग्न हो जायँगे और मालूम नहीं क्या सोचेंगे। साथियोंकी जान सकटमे होगी। घोड़ा बेदम हो रहा है। उसपर ४० मील जाना बहुत ही कठिन और बड़े साहसका काम है। लेकिन यह महात्मा शिकार खेलते हैं यह बड़ी अजीब बात है। कदाचित् यह वेदान्ती हैं, ऐसे वेदान्ती जो जीवन और मृत्यु मनुष्यके हाथ नहीं मानते। इनके साथ शिकार मे बड़ा आनन्द आवेगा।

यह सब सोच विचारकर उन्होंने संन्यासीका आतिथ्य स्वीकार किया, उन्हें धन्यवाद दिया और अपने भाग्यकी प्रशंसा की, जिसने उन्हें कुछ कालतक और साधु संगसे लाभ उठानेका अवसर दिया।

[४]

रात दस बजेका समय था। घनी अँधियारी छाई हुई थी। संन्यासीने कहा—अब हमारे चलनेका समय हो गया है।

राजकुमार पहलेहीसे प्रस्तुत था। बन्दूक कन्धेपर रख बोला—इस अन्धकारमें शूकर अधिकतासे मिलेंगे। किन्तु, ये पशु बड़े भयानक हैं।

सन्यासीने एक मोटा-सोटा हाथमें लिया और कहा—कदाचित् इससे भी अच्छे शिकार हाथ आवे। मैं जब अकेला जाता हूँ, कभी खाली नही लौटता। आज तो हम दो हैं।

दोनों शिकारी नदीके तटपर नालों और रेतके टीलोंको पार करते और झाड़ियोंसे अटकते चुपचाप चले जा रहे थे। एक ओर श्यामवर्ण नदी थी, जिसमें नक्षत्रोंका प्रतिबिम्ब नाचता

दिखाई देता था और लहरें गान कर रही थीं। दूसरी ओर घनघोर अन्धकार जिसमें कभी-कभी केवल खद्योतोंके चमकनेसे एक क्षण स्थायी प्रकाश फैल जाता था। मालूम होता था कि वे भी अन्धेरेमें निकलनेसे डरते हैं।

ऐसी अवस्थामें कोई एक घण्टा चलनेके बाद वह एक ऐसे स्थानपर पहुँचे, जहाँ एक ऊँचे टीलेपर घने वृक्षोंके नीचे आग जलती दिखाई पड़ी। उस समय इन लोगोंको मालूम हुआ कि संसारके अतिरिक्त और भी कई वस्तुएँ हैं।

सन्यासीने ठहरनेका संकेत किया। दोनों एक पेड़की ओटमें खड़े होकर ध्यानपूर्वक देखने लगे। राजकुमारने बन्दूक भर ली। टीलेपर एक बड़ा छायादार वट-वृक्ष भी था। उसीके नीचे अन्धकारमें १०-१२ मनुष्य अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित मिर्जई पहिने चरसका दम लगा रहे थे। इनमेंसे प्रायः सभी लम्बे थे। सभीके सीने चौड़े और सभी हृष्ट पुष्ट। मालूम होता था कि सैनिकोंका एक दल विश्राम कर रहा है।

राजकुमारने पूछा—यह लोग शिकारी हैं? सन्यासीने धीरेसे कहा—बड़े शिकारी है। ये राह चलते यात्रियोंका शिकार करते हैं। ये बड़े भयानक हिंस्र पशु हैं। इनके अत्याचारोंसे गाँवके गाँव बर्बाद हो गये और जितनोंको इन्होंने मारा है उनका हिसाब परमात्मा ही जानता है। यदि आपको शिकार करना हो तो इनका शिकार कीजिये। ऐसा शिकार आप बहुत प्रयत्न करने पर भी नहीं पा सकते। यही पशु हैं जिनपर आपको शस्त्रोंका प्रहार करना उचित है। राजाओं और अधिकारियोंके शिकार यही हैं। इससे आपका नाम और यश फैलेगा।

[५]

राजकुमारके जीमें आया कि दो-एकको मार डालें। किन्तु संन्यासीने रोका और कहा—इन्हें छेड़ना ठीक नहीं। अगर यह कुछ उपद्रव न करें, तो भी बचकर निकल जायेंगे। आगे चलो, सम्भव है कि इससे अच्छे शिकार हाथ आवें।

तिथि सप्तमी थी। चन्द्रमा भी उदय हो आया। इन लोगोंने नदीका किनारा छोड़ दिया था। जंगल भी पीछे रह गया था। सामने एक कच्ची सड़क दिखाई पड़ी और थोड़ी देरमें कुछ बस्ती भी देख पड़ने लगी। सन्यासी एक विशाल प्रासादके सामने आकर रुक गये और राजकुमारसे बोले—आओ, इस मौलसरीके वृक्षपर बैठें। परन्तु देखो, बोलना मत। नहीं तो दोनोंकी जानके लाले पड़ जायेंगे। इसमें एक बड़ा भयानक हिंस्र जीव रहता है जिसने अनगिनत जीवधारियोंका वध किया है। कदाचित् हम लोग आज इसको संसारसे मुक्त कर दें!

राजकुमार बहुत प्रसन्न हुआ और सोचने लगा—चलो, रातभर की दौड़ तो सफल हुई। दोनों मौलसरीपर चढ़कर बैठ गये। राजकुमारने अपनी बन्दूक संभाल ली और शिकारकी, जिसे वह तेन्दुआ समझे हुए था, बाट देखने लगा।

रात आधीसे अधिक व्यतीत हो चुकी थी। यकायक महलके समीप कुछ हलचल मालूम हुई और बैठकके द्वार खुल गये। मोमबत्तियोंके जलनेसे सारा हाता प्रकाशमान हो गया। कमरेके हर कोनेमें सुखकी सामग्री दिखाई दे रही थी। बीचमें एक हृष्ट-पुष्ट मनुष्य गलेमें रेशमी चादर डाले, माथेपर केसरका अर्ध-

लम्बाकार तिलक लगाये, मसनदके सहारे बैठा सुनहरी मुँहनालसे लच्छेदार धुँआ फेंक रहा था। इतनेहीमें उन्होंने देखा कि नर्तकियोंके दल-के-दल चले आ रहे हैं। उनके हाव भाव व कटाक्षके सर चलने लगे। समाजियोंने सुर मिलाया। गाना आरम्भ हुआ और साथ ही-साथ मद्यपान भी चलने लगा।

राजकुमारने अचम्भित होकर पूछा—यह तो कोई बहुत बड़ा रईस जान पडता है।

संन्यासीने उत्तर दिया—नही यह रईस नहीं हैं, एक बड़े मन्दिरके महन्त हैं, साधु हैं। ससारका त्याग कर चुके हैं। सांसारिक वस्तुओंकी ओर आँख नही उठाते, पूर्ण ब्रह्म ज्ञानकी बातें करते हैं। यह सब सामान इनकी आत्माकी प्रसन्नताके लिए हैं। इन्द्रियोंको वश किये हुए इन्हें बहुत दिन हुए। सहस्रों सीधे साधे मनुष्य इनपर विश्वास करते हैं। इनको अपना देवता समझते हैं। यदि आप शिकार करना चाहते हैं तो इनका कीजिये। यही राजाओं और अधिकारियोंके शिकार हैं। ऐसे रगे हुए सियारोंसे ससारको मुक्त करना आपका परम धर्म्म है। इससे आपकी प्रजाका हित होगा तथा आपका नाम और यश फैलेगा।

दोनों शिकारी नीचे उतरे। सन्यासीने कहा—अब रात अधिक बीत चुकी है। तुम बहुत थक गये होगे। किन्तु राजकुमारोंके साथ आखेट करनेका अवसर मुझे बहुत कम प्राप्त होता है। अतएव एक शिकारका पता और लगाकर तब लौटेंगे।

राजकुमारको इन शिकारोंमें सच्चे उपदेशका सुख प्राप्त हो रहा था। बोला—स्वामीजी, थकनेका नाम न लीजिए। यदि मैं

अभी बध कर दूँ। किन्तु संन्यासीजीने रोका। बोले—आज इस शिकारका समय नहीं है। यदि आप ढूँढेंगे तो ऐसे शिकार बहुत मिलेंगे। मैंने इनके कुछ ठिकाने बतला दिये हैं। अब प्रातः काल होनेमें अधिक विलम्ब नही है। कुटी अभी यहांसे दस मील होगी। आइये, शीघ्र चलें।

[७]

दोनों शिकारी तीन बजते-बजते फिर कुटीमें लौट आये, उस समय बड़ी सुहावनी रात थी, शीतल समीरने हिला-हिलाकर वृक्षों और पत्तोंकी निद्रा भङ्ग करना आरम्भ कर दिया था।

आध घण्टेमें राजकुमार तैयार हो गये। संन्यासीमें अपना विश्वास और कृतज्ञता प्रकट करते हुए उनके चरणोंपर अपना मस्तक नवाया और घोड़ेपर सवार हो गये।

सन्यासीने उनकी पीठपर कृपापूर्वक हाथ फेरा। आशीर्वाद देकर बोले—राजकुमार! तुमसे भेट होनेसे मेरा चित्त बहुत प्रसन्न हुआ। परमात्माने तुम्हें अपनी सृष्टिपर राज करनेके हेतु जन्म दिया है। तुम्हारा धर्म है कि सदा प्रजा पालक बनो। तुम्हें पशुओंका वध करना उचित नहीं। इन दीन पशुओंके वध करनेमें कोई बहादुरी नहीं, कोई साहस नहीं, सच्चा साहस और सच्ची बहादुरी दीनोंकी रक्षा और उनकी सहायता करनेमें है, विश्वास मानों, जो मनुष्य केवल चित्तविनोदार्थ जीवहिंसा करता है वह निर्दयी घातकसे भी कठोर-हृदय है। वह घातकके लिये जीविका है, किन्तु शिकारीके लिये केवल दिल बहलानेका एक सामान है। तुम्हारे लिये ऐसे शिकारोंकी आवश्यकता है जिसमें तुम्हारी

प्रजाको सुख पहुँचे। निःशब्द पशुओंका वध न करके तुमको उन हिंसकोंके पीछे दौड़ना चाहिये जो धोखाधड़ीसे दूसरोंका वध करते हैं। ऐसे आखेट करो जिससे तुम्हारी आत्माको शान्ति मिले। तुम्हारी कीर्त्ति संसारमें फैले। तुम्हारा काम वध करना नही, जीवित रखना है। यदि वध करो तो केवल जीवित रखने के लिये। यही तुम्हारा धर्म है। जाओ, परमात्मा तुम्हारा कल्याण करे।

बलिदान—

[१]

मनुष्यकी आर्थिक अवस्थाका सबसे ज्यादा असर उसके नामपर पड़ता है। मौजे बेलाके मगरू ठाकुर जबसे कान्सटेबल हो गये हैं, उनका नाम मङ्गल सिंह हो गया है। अब उन्हें कोई मगरू कहनेका साहस नही कर सकता। कल्लू अहीरने जबसे हलकेके थानेदारसाहबसे मित्रता कर ली है और गाँवका मुखिया हो गया है, उसका नाम कालिकादीन हो गया है। अब उसे कल्लू कहे तो आँखें लाल-पीली करता है। इसी प्रकार हरखचन्द्र कुरमी अब हरखू हो गया है। आजसे बीस साल पहले उसके यहाँ शक्कर बनती थी, कई हलकी खेती होती थी और कारोबार खूब फैला हुआ था। लेकिन विदेशी शक्करकी आमदनीने उसे मटियामेट

कर दिया। धीरे धीरे कारखाना टूट गया, जमीन टूट गयी, गाहक टूट गये और वह भी टूट गया। सत्तर वर्षका बूढा, जो एक तकियेदार माचेपर बैठा हुआ नारियल पिया करता, अब सिरपर टोकरी लिये खाद फेकने जाता है। परन्तु उसके मुखपर अब भी एक प्रकारकी गम्भीरता, बातचीतमें अब भी एक प्रकारकी अकड, चाल-ढालमें अब भी एक प्रकारका स्वाभिमान भरा हुआ है। इसपर कालकी गतिका प्रभाव नही पडा। रस्सी जल गयी, पर बल नही टूटा। भले दिन मनुष्यके चरित्रपर सदैवके लिये अपना चिह्न छोड जाते हैं। हरखूके पास अब केवल पाँच बीघा जमीन है, केवल दो बैल हैं। एक ही हलकी खेती होती है।

लेकिन पञ्चायतोंमें, आपसकी कलहमें, उसकी सम्मति अब भी समान दृष्टिसे देखी जाती है। वह जो बात कहता है, बेलाग कहता है और गाँवके अनपढे उसके सामने मुँह नही खोल सकते।

हरखूने अपने जीवनमें कभी दवा नही खाई थी। वह बीमार जरूर पड़ता, कुआर मासमें मलेरियासे कभी न बचता था। लेकिन दस-पाँच दिनमें वह बिना दवा खाये ही चङ्गा हो जाता था। इस वर्ष भी कार्तिकमे बीमार पडा और यह समझकर कि अच्छा तो हो ही जाऊँगा, उसने कुछ परवाह न की। परन्तु अबकी ज्वर मौतका परवाना लेकर चला था। एक सप्ताह बीता, दूसरा सप्ताह बीता, पूरा महीना बीत गया पर हरखू चारपाईसे न उठा। अब उसे दवाकी जरूरत मालूम हुई। उसका लड़का गिरधारी कभी नीमकी सीखें पिलाता, कभी गुर्चका सत, कभी गदापूरनाकी जड़। पर इन औषधियोंसे कोई फायदा न होता था।-

हरखूको विश्वास हो गया कि अब ससारसे चलनेके दिन आ गये।

एक दिन मङ्गलसिंह उसे देखने गये, बेचारा टूटी खाटपर पड़ा राम नाम जप रहा था। मङ्गलसिंहने कहा—"बाबा, बिना दवा खाये अच्छा न होगे; कुनैन क्यो नही खाते ?" हरखूने उदासीन भावसे कहा—तो लेते आना।

दूसरे दिन कालिकादीनने आकर कहा—बाबा, दो चार दिन कोई दवा खा लो। अब तुम्हारी जवानीकी देह थोड़े है कि बिना दवा दर्पणके अच्छे हो जाओगे।

हरखूने उसी मन्द भावसे कहा—"तो लेते आना।" लेकिन रोगीको देख आना एक बात है, दवा लाकर उसे देना दूसरी बात है। पहली बात शिष्टाचारसे होती है, दूसरी सच्ची समवेदना-से। न मगलसिंहने खबर ली; न कालिकादीनने, न किसी तीसरे हीने। हरखू दालानमें खाटपर पड़ा रहता। मङ्गलसिंह कभी नजर आ जाते तो कहता—भैया, वह दवा नहीं लाये ?

मङ्गलसिंह कतराकर निकल जाते। कालिकादीन दिखाई देते तो उनसे भी यही प्रश्न करता। लेकिन यह भी नजर बचा जाते। या तो उसे यह सूझता ही नहीं था कि दवा पैसोंके बिना नहीं आती, या वह पैसोंको जानसे भी प्रिय समझता था, अथवा वह जीवनसे निराश हो गया था। उसने कभी दवाके दामकी बात नहीं की। दवा न आयी। उसकी दशा दिनोंदिन बिगड़ती गई। यहाँतक कि पाँच महीने कष्ट भोगनेके बाद उसने ठीक होलीके दिन शरीर त्याग दिया। गिरधारीने उसका शव बड़ी धूमधामके साथ निकाला। क्रिया-कर्म्म बड़े हौसलेसे किया। कई गाँवके ब्राह्मणोंको निमन्त्रित किया।

बेलामें होली न मनाई गयी; न अबीर और न गुलाल उड़ी, न डफली बजी, न भङ्गकी नालियाँ बहीं। कुछ लोग मनमें हरखूको कोसते जरूर थे कि इस बुड्ढेको आज ही मरना था, दो चार दिन बाद मरता।

लेकिन इतना निर्लज्ज कोई न था कि शोकमें आनन्द मनाता, वह शहर नहीं था, जहाँ कोई किसीके काममें शरीक नहीं होता, जहाँ पड़ोसीके रोने पीटनेकी आवाज हमारे कानोंतक नहीं पहुँचती।

[२]

हरखूके खेत गाँववालोंकी नजरपर चढ़े हुए थे। पाँचो बीघा जमीन कुएँके निकट खाद पाँससे लदी हुई मेड बाँधसे ठीक थी। उनमें तीन तीन फसलें पैदा होती थी। हरखूके मरते ही उनपर चारो ओरसे धावे होने लगे। गिरधारी तो क्रिया-कर्म्ममे फँसा हुआ था। उधर गाँवके मनचले किसान लाला ओंकारनाथको चैन न लेने देते थे, नजरानेकी बड़ी बड़ी रकमें पेश हो रही थी। कोई सालभरका लगान पेशगी देनेपर तैयार था कोई नजरानेकी दूनी रकमका दस्तावेज लिखनेपर तुला हुआ था। लेकिन ओंकारनाथ सबको टालते रहते थे। उनका विचार था कि गिरधारीके बापने इन खेतोंको बीस वर्षतक जोता है, इसलिये गिरधारीका हक सबसे ज्यादा है। वह अगर दूसरोंसे कम भी नजराना दे तो खेत उसीको देने चाहिये। अस्तु, जब गिरधारी क्रिया-कर्म्मसे निवृत्त हो गया और चैतका महीना भी समाप्त होने आया, तब जमीदार साहबने गिरधारीको बुलाया और उससे पूछा—खेतोंके बारेमें क्या कहते हो?

गिरधारीने रोकर कहा—सरकार, इन्हीं खेतों हीका तो आसरा है, जोतूँगा नहीं तो क्या करूँगा।

ओंकारनाथ—नहीं, जरूर जोतो, खेत तुम्हारे हैं। मैं तुमसे छोड़नेको नहीं कहता। हरखूने उसे बीस सालतक जोता। उनपर तुम्हारा हक है। लेकिन तुम देखते हो अब जमीनकी दर कितनी बढ़ गयी है। तुम आठ रुपये बीघेपर जोतते थे, मुझे १०) मिल रहे हैं और नजरानेके सौ अलग। तुम्हारे साथ रिआयत करके लगान वही रखता हूँ, पर नजरानेके रुपये तुम्हें देने पड़ेंगे।

गिरधारी—सरकार, मेरे घरमें तो इस समय रोटियोका भी ठिकाना नहीं है। इतने रुपये कहासे लाऊँगा? जो कुछ जमा-जथा थी, दादाके काममें उठ गयी। अनाज खलिहानमें है। लेकिन दादाके बीमार हो जानेसे उपज भी अच्छी नही हुई। रुपये कहासे लाऊँ?

ओंकारनाथ—यह सच है लेकिन मैं इससे ज्यादा रिआयत नहीं कर सकता।

गिरधारी—नही सरकार! ऐसा न कहिये। नही तो हम बिना मारे मर जायँगे। आप बड़े होकर कहते हैं तो मैं बैल बछिया बेचकर पचास रुपया ला सकता हूँ। इससे बेशीकी हिम्मत मेरी नहीं पडती।

ओंकारनाथ चिढ़कर बोले—तुम समझते होगे कि हम ये रुपये लेकर अपने घरमें रख लेते हैं और चैनकी वशी बजाते हैं। लेकिन हमारे ऊपर जो कुछ गुजरती है हमही जानते हैं। कही यह चन्दा, कहीं वह चन्दा; कही यह नजर, कही वह नजर, कहीं यह इनाम, कही वह इनाम। इनके मारे कचूमर निकल

जाता है। बडे दिनमें सैकड़ों रुपये डालियोंमें उड़ जाते हैं। जिसे डाली न दो वही मुँह फुलाता है। जिन चीजोंके लिए लड़के तरस कर रह जाते हैं उन्हें बाहरसे मँगाकर डालियोंमें सजाता हूँ। उसपर कभी कानूनगो आ गये, कभी तहसीलदार, कभी डिप्टी साहबका लश्कर आ गया। सब मेरे मेहमान होते हैं। अगर न करूँ तो नक्कू बनूँ और सबकी आँखोंमें काटा बन जाऊँ। सालमें हजार बारह सौ मोदीको इसी रसद खुराकके मदमें देने पड़ते हैं। यह सब कहासे आवे? बस, यही जी चाहता है कि छोड़कर निकल जाऊँ। लेकिन हमें तो परमात्मा ने इसीलिये बनाया है कि एकसे रुपया सताकर ले और दूसरेको रो रोकर दे, यही हमारा काम है। तुम्हारे साथ इतनी रिआयत कर रहा हूँ। लेकिन तुम इतनी रिआयतपर भी खुश नहीं होते तो हरि इच्छा। नजरानेमें एक पैसेकी भी रिआयत न होगी। अगर एक हफ्तेके अन्दर रुपये दाखिल करोगे तो खेत जोतने पाओगे नहीं तो नहीं, मैं कोई दूसरा प्रबन्ध कर दूँगा।

[३]

गिरधारी उदास और निराश होकर घर आया। १००) का प्रबन्ध करना उसके काबूके बाहर था। सोचने लगा, अगर दोनों बैल बेच दूँ तो खेत ही लेकर क्या करूगा? घर बेचूँ तो वहाँ लेनेवाला ही कौन है? और फिर बाप-दादोंका नाम डूबता है। चार-पाँच पेड़ हैं, लेकिन उन्हें बेचकर २५) या ३०) से अधिक न मिलेंगे। उधार लूँ तो देता कौन है? अभी बनियेके ५०) सिरपर चढ़े हैं। वह एक पैसा भी न देगा। घरमें गहने भी

तो नही हैं। नहीं उन्हींको बेंचता। ले देकर एक हँसली बनवाई थी, वह भी बनियेके घर पड़ी हुई है। सालभर हो गया, छुड़ानेकी नौबत न आयी। गिरधारी और उसकी स्त्री सुभागी दोनों ही इसी चिन्तामें पड़े रहते, लेकिन कोई उपाय न सूझता था। गिरधारीको खाना पीना अच्छा न लगता, रातको नींद न आती। खेतोंके निकलनेका ध्यान आते ही उसके हृदयमें हूक सी उठने लगती। हाय! वह भूमि जिसे हमने वर्षों जोता, जिसे खादसे पाटा, जिसमें भेड़ें रक्खीं, जिसकी मेड़ें बनाई उसका मजा अब दूसरा उठावेगा।

वे खेत गिरधारीके जीवनका अंश हो गये थे। उनकी एक-एक अंगुल भूमि उसके रक्तसे रँगी हुई थी। उनका एक एक परमाणु उसके पसीनेसे तर हो रहा था।

उनके नाम उसकी जिह्वापर उसी तरह आते थे जिस तरह अपने तीनों बच्चोंके। कोई चौबीसो था, कोई बाईसो था, कोई नालेवाला, कोई तलैयावाला। इन नामोंके स्मरण होते ही खेतोंका चित्र उसकी आँखोंके सामने खिंच जाता था। वह इन खेतोंकी चर्चा इस तरह करता मानों वे सजीव हैं। मानों उसके भले बुरेके साथी हैं। उसके जीवनकी सारी आशायें, सारी इच्छायें; सारे मनसूबे, सारी मनकी मिठाइयाँ, सारे हवाई किले, इन्हीं खेतोंपर अवलम्बित थे। इनके बिना वह जीवनकी कल्पना ही नहीं कर सकता था और वे ही अब हाथसे निकले जाते हैं, वह घबराकर घरसे निकल जाता और घटों उन्हीं खेतोकी मेड़ोंपर बैठा हुआ रोता, मानों उनसे बिदा हो रहा है। इस तरह एक सप्ताह बीत गया और गिरधारी रुपयेका कोई बन्दोबस्त न कर

सका। आठवें दिन उसे मालूम हुआ कि कालिकादीनने १००) नजराने देकर १०) बीघेपर खेत ले लिये। गिरधारीने एक ठण्ढी सांस ली। एक क्षणके बाद वह अपने दादाका नाम लेकर बिलख बिलखकर रोने लगा। उस दिन घरमें चूल्हा नहीं जला। ऐसा मालूम होता था मानों हरखू आज ही मरा है।

[४]

लेकिन सुभागी यों चुपचाप बैठनेवाली स्त्री न थी। वह क्रोधसे भरी हुई कालिकादीनके घर गयी और उसकी स्त्रीको खूब लथेड़ा, कलका बानी आजका सेठ, खेत जोतने चले हैं। देखें कौन मेरे खेतमें हल ले जाता है? अपना और उसका लोहू एक कर दूँ। पड़ोसियोंने उसका पक्ष लिया, सच तो है, आपसमें यह चढ़ा ऊपरी नहीं चाहिए। नारायणने धन दिया है, तो क्या गरीबोंको कुचलते फिरेंगे? सुभागीने समझा, मैंने मैदान मार लिया। उसका चित्त बहुत शान्त हो गया। किन्तु वही वायु जो पानीमें लहरें पैदा करती है, वृक्षोंको जड़से उखाड़ डालती है। सुभागी तो पड़ोसियोंकी पञ्चायतमें अपने दुखड़े रोती और कालिकादीनकी स्त्रीसे छेड़ छेड़ लड़ती। इधर गिरधारी अपने द्वारपर बैठा हुआ सोचता, अब मेरा क्या हाल होगा? अब यह जीवन कैसे कटेगा? ये लड़के किसके द्वारपर जायँगे? मजदूरीका विचार करते ही उसका हृदय व्याकुल हो जाता। इतने दिनों तक स्वाधीनता और सम्मानका सुख भोगनेके बाद अधम चाकरी-की शरण लेनेके बदले वह मर जाना अच्छा समझता था। वह अबतक गृहस्थ था, उसकी गणना गाँवके भले आदमियोंमें थी,

उसे गाँवके मामलेमें बोलनेका अधिकार था। उसके घरमें धन न था। पर मान था। नाई, बढ़ई, कुम्हार, पुरोहित, भाट, चौकीदार ये सब उसका मुँह ताकते थे। अब यह मर्यादा कहाँ? अब कौन उसकी बात पूछेगा? कौन उसके द्वारपर आवेगा? अब उसे किसीके बराबर बैठनेका, किसीके बीचमे बोलनेका हक नहीं रहा। अब उसे पेटके लिये दूसरोंकी गुलामी करनी पड़ेगी। अब पहर रात रहे कौन बैलोंको नादमे लगावेगा। वह दिन अब कहाँ, जब गीत गा गाकर हल चलाता था। चोटीका पसीना एँडी तक आता था, पर जरा भी थकावट न आती थी। अपने लहलहाते हुए खेतोंको देखकर फूला न समाता था। खलिहानमें अनाजका ढेर सामने रक्खे हुए अपनेको राजा समझता था। अब अनाजके टोकरे भर-भरकर कौन लावेगा?

अब खत्ते कहाँ? बखार कहाँ? यही सोचते सोचते गिरधारीकी आँखोंसे आँसूकी झड़ी लग जाती थी। गाँवके दो-चार सज्जन, जो कालिकादीनसे जलते थे, कभी कभी गिरधारीको तसल्ली देने आया करते थे, पर वह उनसे भी खुलकर न बोलता। उसे मालूम होता था कि मैं सबकी नजरोंमें गिर गया हूँ।

अगर कोई समझाता कि तुमने क्रिया कर्म्ममे व्यर्थ इतने रुपये उड़ा दिये, तो उसे बहुत दुःख होता। वह अपने उस कामपर जरा भी न पछताता। मेरे भाग्यमे जो लिखा है वह होगा, पर दादाके ऋणसे तो उऋण हो गया; उन्होने अपनी जिन्दगीमें चारको खिलाकर खाया। क्या मरनेके पीछे उन्हें पिण्डे-पानीको तरसाता।

इस प्रकार तीन मास बीत गये और आसाढ आ पहुँचा।

आकाशमें घटायें आयीं, पानी गिरा, किसान हल जुए ठीक करने लगे। बढ़ई हलोंकी मरम्मत करने लगा। गिरधारी पागलकी तरह कभी घरके भीतर जाता, कभी बाहर आता, अपने हलोंको निकाल देखता, इसकी मुठिया टूट गयी है; इसकी फाल ढीली हो गयी है, जुएमें सैला नहीं है। यह देखते-देखते वह एक क्षण अपनेको भूल गया। दौड़ा हुआ बढ़ईके यहाँ गया और बोला—'रज्जू, मेरे हल भी बिगड़े हुए हैं, चलो बना दो।' रज्जूने उसकी ओर करुणा भावसे देखा और अपना काम करने लगा। गिरधारीको होश आ गया, नींदसे चौंक पड़ा, ग्लानिसे उसका सिर झुक गया, आँखें भर आयीं। चुपचाप घर चला आया।

गाँवमें चारों ओर हलचल मची हुई थी। कोई सनके बीज खोजता फिरता था, कोई जमींदारके चौपालसे धानके बीज लिये आता था, कहीं सलाह होती, किस खेतमें क्या बोना चाहिये, कहीं चर्चा होती थी कि पानी बहुत बरस गया, दो चार दिन ठहरकर बोना चाहिये। गिरधारी ये बातें सुनता और जलहीन मछलीकी तरह तड़पता था।

[५]

एक दिन सन्ध्या समय गिरधारी खड़ा अपने बैलोंको खुजला रहा था कि मङ्गलसिंह आये और इधर उधरकी बातें करके बोले—गोईं को बाँधकर कबतक खिलाओगे? निकाल क्यों नहीं देते?

गिरधारीने मलिन भावसे कहा—हाँ कोई गाहक आवे तो निकाल दूँ।

मगलसिंह—एक गाहक तो हमी हैं; हमींको दे दो।

गिरधारी अभी कुछ उत्तर न देने पाया था कि तुलसी बनिया आया और गरजकर बोला—गिरधर ! तुम्हें रुपये देने हैं कि नही, वैसा कहो। तीन महीने हीला-हवाला करते चले आते हो। अब कौन खेती करते हो कि तुम्हारी फसलको अगोरे बैठे रहे ।

गिरधारीने दीनतासे कहा—साह, जैसे इतने दिनों माने हो आज और मान जाओ । कल तुम्हारी एक एक कौड़ी चुका दूँगा।

मङ्गल और तुलसीने इशारोंसे बातें कीं और तुलसी भुन-भुनाता हुआ चला गया। तब गिरधारी मंगलसिंहसे बोला—तुम इन्हे ले लो तो घरके घरहीमे रह जायँ। कभी कभी आँखसे देख तो लिया करूँगा।

मङ्गलसिंह—मुझे अभी तो ऐसा कोई काम नही लेकिन घर पर सलाह करूँगा।

गिरधारी—मुझे तुलसीके रुपये देने हैं, नही तो खिलानेको तो भूसा है।

मङ्गल सिंह—यह बड़ा बदमाश है, कही नालिश न कर दे।

सरल हृदय गिरधारी धमकीमे आ गया। कार्य्य-कुशल मगलसिंहको सस्ता सौदा करनेका अच्छा सुअवसर मिला। ८०) की जोडी ६०) मे ठीक कर ली।

गिरधारीने अबतक बैलोंको न जाने किस आशासे बाँधकर खिलाया था। आज आशाका वह कल्पित सूत्र भी टूट गया। मंगलसिंह गिरधारीकी खाटपर बैठे रुपये गिन रहे थे और

गिरधारी बैलोंके पास विषादमय नेत्रोंसे उनके मुँहकी ओर ताक रहा था। आह! यह मेरे खेतोंके कमानेवाले, मेरे जीवनके आधार, मेरे अन्नदाता, मेरी मान मर्य्यादाकी रक्षा करनेवाले, जिनके लिये पहर रातसे उठकर छाटी काटता था; जिनके खली-दानेकी चिन्ता अपने खानेसे ज्यादा रहती थी, जिनके लिये सारा घर दिनभर हरियाली उखाड़ा करता था। ये मेरी आशाकी दो आँखे, मेरे इरादेके दो तारे, मेरे अच्छे दिनोंके दो चिह्न, मेरे दो हाथ, अब मुझसे बिदा हो रहे हैं।

जब मगलसिहने रुपये गिनकर रख दिये और बैलोंको ले चले, तब गिरधारी उनके कन्धोंपर सिर रखकर खूब फूट फूटकर रोया। जैसे कन्या मायकेसे विदा होते समय माँ-बापके पैरोको नहीं छोड़ती, उसी तरह गिरधारी इन बैलोको न छोड़ता था। सुभागी भी दालानमे खड़ी रो रही थी और छोटा लड़का मगल सिहको एक बाँसकी छड़ीसे मार रहा था।

रातको गिरधारीने कुछ नहीं खाया। चारपाईपर पड़ रहा। प्रातःकाल सुभागी चिलम भरकर ले गयी तो वह चारपाईपर न था। उसने समझा कहीं गये होंगे। लेकिन जब दो-तीन घड़ी दिन चढ़ आया और वह न लौटा तो उसने रोना-धोना शुरू किया। गाँवके लोग जमा हो गये, चारों ओर खोज होने लगी, पर गिरधारीका पता न चला।

[६]

सन्ध्या हो गयी थी। अन्धेरा छा रहा था। सुभागीने दिया जलाकर गिरधारीके सिरहाने रख दिया था और बैठी द्वारकी

ओर ताक रही थी कि सहसा उसे पैरोंकी आहट मालूम हुई। सुभागीका हृदय धड़क उठा। वह दौड़कर बाहर आयी और इधर-उधर ताकने लगी। उसने देखा कि गिरधारी बैलोंकी नांदके पास सिर झुकाये खड़ा है।

सुभागी बोल उठी—घर आओ वहाँ खड़े क्या कर रहे हो, आज सारे दिन कहाँ रहे ?

यह कहते हुए वह गिरधारीकी ओर चली। गिरधारीने कुछ उत्तर न दिया। वह पीछे हटने लगा और थोड़ी दूर जाकर गायब हो गया। सुभागी चिल्लाई और मूर्च्छित होकर गिर पड़ी।

दूसरे दिन कालिकादीन हल लेकर अपने नये खेतपर पहुँचे, अभी कुछ अन्धेरा था। वह बैलोंको हलमें लगा रहे थे कि यकायक उन्होंने देखा कि गिरधारी खेतकी मेड़पर खड़ा है। वही मिर्जई, वही पगड़ी, वही सोंटा।

कालिकादीनने कहा—अरे गिरधारी! मरदे आदमी, तुम यहाँ खड़े हो, और बेचारी सुभागी हैरान हो रही है। कहाँसे आ रहे हो ?

यह कहते हुए बैलोंको छोड़कर गिरधारीकी ओर चले। गिरधारी पीछे हटने लगा और पीछेवाले कुएँमें कूद पड़ा। कालिकादीनने चीख मारी और हल-बैल वहीं छोड़कर भागा। सारे गाँवमे शोर मच गया, लोग नाना प्रकारकी कल्पनाएँ करने लगे। कालिकादीनको गिरधारीवाले खेतोंमें जानेकी हिम्मत न पड़ी।

गिरधारीको गायब हुए ६ महीने बीत चुके हैं। उसका बड़ा

लड़का अब एक ईं टकेभट्ठेपर काम करता है और २०) महीना घर आता है। अब वह कमीज और अङ्गरेज़ी जूता पहनता है। घरमे दोनो जून तरकारी पकती है और जौके बदले गेहूँ खाया जाता है, लेकिन गॉवमें उसका कुछ भी आदर नही। वह अब मजूरा है। सुभागी अब पराये गॉवमें आये हुए कुत्ते की भाति दबकती फिरती है। वह अब पचायतमें नही बैठती। वह अब मजूरकी मॉ है। कालिकादीनने गिरधारीके खेतोसे इस्तीफा दे दिया है क्योंकि गिरधारी अभीतक अपने खेतोके चारो तरफ मॅड़राया करता है। अन्धेरा होते ही वह मेड़पर आकर बैठ जाता है और कभी कभी रातको उधरसे उसके रोनेकी आवाज सुनाई देती है। वह किसीसे बोलता नही, किसीको छेड़ता नहीं। उसे केवल अपने खेतोंको देखकर सन्तोष होता है। दीया जलने के बाद उधरका रास्ता बन्द हो जाता है।

लाला ओंकारनाथ बहुत चाहते हैं कि ये खेत उठ जायॅ, लेकिन गॉवके लोग उन खेतोका नाम लेते डरते हैं।

बोध—

[१]

पण्डित चन्द्रधरने एक अपर प्राइमरी मुदरिसी तो कर ली थी, किन्तु सदा पछताया करते थे कि कहासे इस जंजालमें आ

फँसे। यदि किसी अन्य विभागमें नौकर होते तो अबतक हाथमें चार पैसे होते, आरामसे जीवन व्यतीत होता। यहाँ तो महीने भर प्रतीक्षा करनेके पीछे कहीं पन्द्रह रुपये देखनेको मिलते हैं। वह भी इधर आये, उधर गायब। न खानेका सुख, न पहननेका आराम। हमसे तो मजूर ही भले।

पण्डितजीके पड़ोसमें दो महाशय और रहते थे। एक ठाकुर अतिबलसिंह, वह थानेमें हेड कान्सटेबल थे। दूसरे, मुंशी बैजनाथ, वह तहसीलमें सियाहेनबीस थे। इन दोनों आदमियोंका वेतन पण्डितजीसे कुछ अधिक न था, तब भी उनकी चैनसे गुजरती थी। सन्ध्याको वह कचहरीसे आते, बच्चोंको पैसे और मिठाइयाँ देते। दोनों आदमियोंके पास टहलुवे थे। घरमें कुरसियाँ, मेजे, फर्श आदि सामग्रियाँ मौजूद थी। ठाकुर साहब शामको आराम कुरसीपर लेट जाते और खुशबूदार खमीरा पीते। मुन्शीजीको शराब कबाबका व्यसन था। अपने सुसज्जित कमरेमे बैठे हुए बोतलकी बोतल साफ कर देते। जब कुछ नशा होता तो हारमोनियम बजाते, सारे मुहल्लेमें उनका रोबदाब था। उन दोनो महाशयोको आते देखकर बनिये उठकर सलाम करते। उनके लिये बाजारमें अलग-भाव था। चार पैसे सेरकी चीज टके सेरमें लाते। लकड़ी ईंधन मुफ्तमें मिलता। पण्डितजी उनके इस ठाट बाटको देखकर कुढ़ते और अपने भाग्यको कोसते। वह लोग इतना भी न जानते थे कि पृथ्वी सूर्यका चक्कर लगाती है अथवा सूर्य्य पृथ्वीका। साधारण पहाड़ोंका भी ज्ञान न था, तिसपर भी ईश्वरने उन्हे इतनी प्रभुता दे रखी थी। यह लोग पण्डितजीपर बड़ी कृपा

रखते थे। कभी सेर आध सेर दूध भेज देते और कभी थोड़ी-सी तरकारियाँ। किन्तु इसके बदलेमें पण्डितजीको ठाकुर साहबके दो और मुन्शीजीके तीन लड़कोंकी निगरानी करनी पड़ती। ठाकुर साहब कहते—'पण्डितजी ? यह लड़के हर घड़ी खेला करते हैं, जरा इनकी खबर लेते रहिये।' मुन्शीजी कहते—'यह लड़के अवारा हुए जाते हैं। जरा इनका ख्याल रखिये।' यह बातें बड़ी अनुग्रहपूर्ण रीतिसे कही जाती थी मानों पण्डितजी उनके गुलाम हैं। पण्डितजीको यह व्यवहार असह्य था, किन्तु इन लोगोंको नाराज करनेका साहस न कर सकते थे, उनकी बदौलत कभी-कभी दूध-दहीके दर्शन हो जाते, कभी अचार चटनी चख लेते। केवल इतना ही नही, बाजारसे चीजें भी सस्ती लाते। इसलिये बेचारे इस अनीतिको विषयकी घूँटके समान पीते। इस दुरवस्थासे निकलनेके लिए उन्होंने बडे-बडे यत्न किये थे। प्रार्थनापत्र लिखे, अफसरोंकी खुशामदें की, पर आशा न पूरी हुई। अन्तमें हारकर बैठ रहे। हाँ, इतना था कि अपने काममें त्रुटि न होने देते। ठीक समयपर जाते, देर करके आते, मन लगाकर पढाते, इससे उनके अफसर लोग खुश थे। सालमें कुछ इनाम दे देते और वेतन वृद्धिका जब कभी अवसर आता, उनका विशेष ध्यान रखते। परन्तु इस विभागकी वेतनवृद्धि ऊसरकी खेती है। बडे भाग्यसे हाथ लगती है। बस्तीके लोग उनसे सन्तुष्ट थे, लड़कोंकी सख्या बढ गयी थी, और पाठशालाके लड़के तो उनपर जान देते थे। कोई उनके घर आकर पानी भर देता, कोई उनकी बकरीके लिये पत्तियाँ तोड़ लाता। पण्डितजी इसीको बहुत समझते थे।

[२]

एक बार सावनके महीनेमे मुन्शी बैजनाथ और ठाकुर अतिबलसिंहने श्रीअयोध्याजीकी यात्राकी सलाह की। दूरकी यात्रा थी। हफ्तों पहलेसे तैयारियाँ होने लगी। बरसातके दिन, सपरिवार जानेमे अडचन थी। किन्तु स्त्रियाँ किसी भाति न मानती थीं। अन्तमें विवश होकर दोनों महाशयोंने एक-एक सप्ताहकी छुट्टी ली और अयोध्याजी चले। पण्डितजीको भी साथ चलनेके लिये बाध्य किया। मेले ठेलेमे एक फालतू आदमीसे बडे काम निकलते हैं। पण्डितजी असमजसमे पड़े, परन्तु जब उन लोगोंने उनका व्यय देना स्वीकार किया तो इन्कार न कर सके और अयोध्याजीकी यात्राका ऐसा सुअवसर पाकर न रुक सके।

बिल्हौरसे एक बजे रातको गाडी छूटती थी। यह लोग खा पीकर स्टेशनपर आ बैठे। जिस समय गाडी आयी, चारों ओर भगदड सी पड गयी। हजारो यात्री जा रहे थे। उस उतावलीमे मुन्शीजी पहले निकल गये। पण्डितजी और ठाकुर साहब साथ थे। एक कमरेमें बैठे। इस आफतमे कौन किसका रास्ता देखता है।

गाड़ियोंमें जगहकी बड़ी कमी थी, परन्तु जिस कमरेमे ठाकुर साहब थे, उसमें केवल चार मनुष्य थे। वह सब लेटे हुए थे। ठाकुर साहब चाहते थे कि वह उठ जायँ तो जगह निकल आवे। उन्होंने एक मनुष्यसे डाँटकर कहा—उठ बैठो जी, देखते नहीं हम लोग खडे हैं।

मुसाफिर लेटे-लेटे बोला—क्यों उठ बैठें जी? कुछ तुम्हारे बैठनेका ठेका लिया है?

ठाकुर—क्या हमने किराया नही दिया है ?

मुसाफिर—जिसे किराया दिया हो, उससे जाकर जगह माँगो।

ठाकुर—जरा होशकी बातें करो। इस डब्बेमें दस यात्रियोंके बैठनेकी आज्ञा है।

मुसाफिर—यह थाना नहीं है, जरा जबान सँभालकर बातें कीजिये।

ठाकुर—तुम कौन हो जी ?

मुसाफिर—हम वही हैं जिसपर आपने खुफिया-फरोशीका अपराध लगाया था और जिसके द्वारसे आप नक्द २५) लेकर टले थे।

ठाकुर—अहा! अब पहचाना। परन्तु मैंने तो तुम्हारे साथ रियायत की थी। चालान कर देता तो तुम सजा पा जाते।

मुसाफिर—और मैंने भी तो तुम्हारे साथ रियायत की कि गाड़ीमें खड़ा रहने दिया। ढकेल देता तो तुम नीचे चले जाते और तुम्हारी हड्डी-पसलीका पता न लगता।

इतनेमें दूसरा लेटा हुआ यात्री जोरसे ठट्ठा मारकर हँसा और बोला—क्यों दारोगा साहब, मुझे क्यों नहीं उठाते ?

ठाकुर साहब क्रोधसे लाल हो रहे थे। सोचते थे अगर थानेमें होता तो इनकी जबान खींच लेता, पर इस समय बुरे फँसे थे। वह बलवान मनुष्य थे, पर यह दोनों मनुष्य भी हट्टे कट्टे देख पड़ते थे।

ठाकुर—सन्दूक नीचे रख दो, बस जगह हो जाय।

दूसरा मुसाफिर बोला—और आप ही क्यो न नीचे बैठ

जायँ। इसमें कौनसी हेठी हुई जाती है। यह थाना थोड़े ही है कि आपके रोबमें फर्क पड़ जायगा।

ठाकुर साहबने उसकी ओर भी ध्यानसे देखकर पूछा—क्या तुम्हें भी मुझसे कोई बैर है?

'जी हाँ, मैं तो आपके खूनका प्यासा हूँ।'

'मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है, तुम्हारी तो सूरत भी नहीं देखी।

दूसरा मुसाफिर—आपने मेरी सूरत न देखी होगी, पर आपकी मैंने देखी है। इसी कलके मेलेमें आपने मुझे कई डण्डे लगाये, मै चुपचाप तमाशा देखता था, पर आपने आकर मेरा कचूमर निकाल लिया। मैं चुपचाप रह गया, पर घाव दिलपर लगा हुआ है। आज उसकी दवा मिलेगी।

यह कहकर उसने और भी पाँव फैला दिये और क्रोधपूर्ण नेत्रोंसे देखने लगा। पण्डितजी अबतक चुपचाप खड़े थे। डरते थे कि कहीं मारपीट न हो जाय। अवसर पाकर ठाकुर साहबको समझाया। ज्योंही तीसरा स्टेशन आया, ठाकुर साहबने बालबच्चों-को वहासे निकालकर दूसरे कमरेमें बैठाया। इन दोनों दुष्टोंने उनका असबाब उठा उठाकर जमींनपर फेंक दिया। जब ठाकुर साहब गाड़ीसे उतरने लगे तो उन्होंने उनको ऐसा धक्का दिया कि बेचारे प्लेटफार्मपर गिर पडे। गार्डसे कहने दौड़े थे कि इञ्जिनने सीटी दी। जाकर गाड़ीमें बैठ गये।

[३]

उधर मुन्शी बैजनाथकी और भी बुरी दशा थी। सारी रात

जागते गुजरी। जरा पैर फैलानेकी जगह न थी। आज उन्होंने जेबमें बोतल भरकर रख ली थी। प्रत्येक स्टेशनपर कोयला पानी ले लेते थे। फल यह हुआ कि पाचन क्रियामें विघ्न पड़ गया। एक बार उल्टी हुई और पेटमें मरोड़ होने लगी। बेचारे बड़ी मुश्किलमें पड़े। चाहते थे कि किसी भांति लेट जायँ, पर वहाँ पैर हिलानेको भी जगह न थी। लखनऊतक तो उन्होंने किसी तरह जब्त किया। आगे चलकर विवश हो गये। एक स्टेशनपर उतर पड़े। खड़े न हो सकते थे। प्लेटफार्मपर लेट गये। पत्नी भी घबराई। बच्चोंको लेकर उतर पड़ी। असबाब उतारा, परन्तु जल्दीमें ट्रङ्क उतारना भूल गई। गाड़ी चल दी। दारोगाजीने अपने मित्रको इस दशामे देखा तो वह भी उतर पड़े। समझ गये कि हजरत आज ज्यादा चढ़ा गये। देखा तो मुन्शीजीकी दशा बिगड़ गयी थी। ज्वर, पेटमे दर्द, नसोंमें तनाव, कै और दस्त। बड़ा खटका हुआ। स्टेशन मास्टरने यह दशा देखी तो समझा हैजा हो गया है। हुक्म दिया कि रोगीको अभी बाहर ले जाओ। विवश होकर लोग मुन्शीजीको एक पेड़के नीचे उठा लाये। उनकी पत्नी रोने लगी। हकीम डाक्टरकी तलाश हुई। पता लगा कि डिस्ट्रिक्टबोर्डकी तरफसे वहाँ एक छोटा सा अस्पताल है। लोगोंकी जानमे जान आयी। किसीसे यह भी मालूम हुआ कि डाक्टर साहब बिल्हौरके रहनेवाले हैं। ढाढ़स बँधा। दारोगाजी अस्पताल दौड़े। डाक्टर साहबसे सारा समाचार कह सुनाया और कहा—आप चलकर जरा उन्हें देख तो लीजिये।

डाक्टरका नाम था चोखेलाल। कम्पौडर थे, लोग आदरसे

अक्टर कहा करते थे। सब वृत्तान्त सुनकर रुखाईसे बोले—सवेरेके समय मुझे बाहर जानेकी आज्ञा नहीं है।

दारोगा—तो क्या मुन्शीजीको यहीं लायें।

चोखेलाल—हाँ आपका जी चाहे लाइये।

दारोगाजीने दौड़-धूपकर एक डोलीका प्रबन्ध किया। मुन्शीजीको लादकर अस्पताल लाये। ज्यों ही बरामदेमें पैर रखा, चोखेलालने डाँटकर कहा—हैजे (विसूचिका) के रोगीको ऊपर लानेकी आज्ञा नहीं है।

बैजनाथ अचेत तो थे नहीं, आवाज सुनी, पहचाना। धीरेसे बोले—अरे यह तो बिल्हौर हीके हैं, भला सा नाम है। तहसील मे आया जाया करते हैं। क्यों महाशय ! मुझे पहचानते हैं ?

चोखेलाल—जी हाँ, खूब पहचानता हूँ।

बैजनाथ—पहचानकर भी इतनी निठुरता। मेरी जान निकल रही है। जरा देखिये मुझे क्या हो गया ?

चोखेलाल—हाँ, यह सब कर दूँगा और मेरा काम ही क्या है ? फीस ?

दरोगाजी—अस्पतालमें कैसी फीस जनाब मन ?

चोखेलाल—वैसी ही जैसी इन मुन्शीजीने मुझसे वसूल की थी जनाब मन।

दारोगाजी—आप क्या कहते हैं, मेरी समझमें नहीं आता।

चोखेलाल—मेरा घर बिल्हौरमे है। वहाँ मेरी थोडीसी जमीन है। सालमें दो बार उसकी देख भालके लिये जाना पड़ता है। जब तहसीलमे लगान दाखिल करने जाता हूँ तो मुन्शीजी डाँटकर अपना हक वसूल कर लेते हैं। न दूँ तो शामतक खड़ा

रहना पड़े। स्याहा न हो। फिर जनाब कभी गाड़ी नावपर, कभी नाव गाड़ीपर। मेरी फीसके दस रुपये निकालिये। देखूँ, दवा दूँ, नहीं तो अपनी राह लीजिये'

दारोगा—दस रुपये!!

चोखेलाल—जी हाँ, और यहाँ ठहरना चाहें तो दस रुपये रोज।

दारोगाजी विवश हो गये। बैजनाथकी स्त्रीसे रुपये मांगे। तब उसे अपने बक्सकी याद आयी। छाती पीट ली। दारोगाजी के पास भी अधिक रुपये नहीं थे, किसी तरह दस रुपये निकाल कर चोखेलालको दिये। उन्होंने दवा दी। दिनभर कुछ फायदा न हुआ। रातको दशा सँभली। दूसरे दिन फिर दवाकी आवश्यकता हुई। मुन्शियाइनका एक गहना जो २०) से कमका न था बाजारमें बेचा गया। तब काम चला। शामतक मुन्शीजी चंगे हुए। रातको गाड़ीपर बैठकर अयोध्या चले। चोखेलालको दिलमें खूब गालियाँ दीं।

[४]

श्री अयोध्याजीमें पहुँचकर स्थानकी खोज हुई। पण्डोंके घर जगह न थी। घर घरमें आदमी भरे हुए थे। सारी बस्ती छान मारी, पर कहीं ठिकाना न मिला। अन्तमें यह निश्चय हुआ कि किसी पेड़के नीचे डेरा जमाना चाहिये। किन्तु जिस पेड़के नीचे जाते थे, वहीं यात्री पड़े मिलते। सिवाय खुले मैदानमें रेतपर पड़ रहनेके और कोई उपाय न था। एक स्वच्छ स्थान देखकर बिस्तरे बिछाये और लेटे। इतनेमें बादल घिर आये। बूँदे गिरने लगीं। बिजली चमकने लगी। गरजसे कानके परदे

फटे जाते थे। लड़के रोते थे, स्त्रियोंके कलेजे काँप रहे थे। अब यहाँ ठहरना दुस्सह था, पर जायँ कहाँ।

अकस्मात् एक मनुष्य नदीकी तरफसे लालटेन लिये आता हुआ दिखाई दिया, वह निकट पहुँचा तो पण्डितजीने उसे देखा। आकृति कुछ पहचानी हुई मालूम हुई, किन्तु यह विचार न आया कि कहाँ देखा है। पास जाकर बोले—'क्यों भाई साहब! यहाँ यात्रियोंके ठहरनेके लिये जगह न मिलेगी?' वह मनुष्य रुक गया। पण्डितजीकी ओर ध्यानसे देखकर बोला—आप पण्डित चन्द्रधर तो नहीं हैं?

पण्डितजी प्रसन्न होकर बोले—जी हाँ। आप मुझे कैसे जानते हैं?

उस मनुष्यने सादर पण्डितजीके चरण छुए और बोला—मैं आपका पुराना शिष्य हूँ। मेरा नाम कृपाशङ्कर है। मेरे पिता कुछ दिनों बिल्हौरमें डाक मुन्शी रहे थे। उन्हीं दिनों मैं आपकी सेवामें पढ़ता था।

पंडितजीकी स्मृति जागी। बोले—ओहो तुम्हीं हो कृपाशंकर। तब तो तुम दुबले पतले लड़के थे, कोई आठ नौ साल हुए होंगे।

कृपाशंकर—जी हाँ, नवाँ साल है। मैंने वहासे आकर इन्ट्रेंस पास किया, अब यहाँ म्युनिसिपलिटीमें नौकर हूँ। कहिये आप तो अच्छी तरह रहे। सौभाग्य था कि आपके दर्शन हो गये।

पण्डितजी—मुझे भी तुमसे मिलकर बड़ा आनन्द हुआ। तुम्हारे पिता अब कहाँ हैं।

कृपाशङ्कर—उनका तो देहान्त हो गया। माता जी हैं। आप यहाँ कब आये?

पण्डितजी—आज ही आया हूँ। पण्डोके घर जगह न मिली। विवश हो यहीं रात काटनेकी ठहरी।

कृपाशङ्कर—बाल बच्चे भी साथ हैं?

पण्डितजी—नही, मै तो अकेले ही आया हूँ, पर मेरे साथ दारोगाजी और सियाहेनवीस साहब हैं—उनके बाल-बच्चे भी साथ हैं।

कृपाशङ्कर—कुल कितने मनुष्य होंगे?

पण्डितजी—हैं तो दस, किन्तु थोड़ी सी जगहमें निर्वाह कर लेंगे।

कृपाशङ्कर—नही साहब बहुत-सी जगह लीजिये। मेरा बड़ा मकान खाली पडा है। चलिये आराममे एक, दो, तीन दिन रहिये। मेरा परम सौभाग्य है कि आपकी कुछ सेवा करनेका अवसर मिला।

कृपाशङ्करने कई कुली बुलाये। असबाब उठवाया और सबको अपने मकानपर ले गया। साफ सुथरा घर था। नौकरने चटपट चारपाइयाँ बिछा दीं। घरमें पूरियाँ पकने लगीं। कृपाशङ्कर हाथ बाधे सेवककी भाति दौड़ता था। हृदयोल्लाससे उसका मुखकमल चमक रहा था। उसकी विनय और नम्रताने सबको मुग्ध कर लिया।

और सब लोग तो खा पीकर सोये, किन्तु पण्डित चन्द्रधरको नीद नहीं आयी। उनकी विचार-शक्ति इस यात्राकी घटनाओंका उल्लेख कर रही थीं। रेलगाड़ीकी रगड़ झगड़ और चिकित्सालयकी नोच-खसोटके सम्मुख कृपाशङ्करकी सहृदयता और शालीनता प्रकाशमय दिखाई देती थी। पण्डितजीने आज

शिक्षकका गौरव समझा। उन्हे आज इस पदकी महानता ज्ञात हुई।

यह लोग तीन दिन अयोध्या रहे। किसी बातका कष्ट न हुआ। कृपाशङ्करने उनके साथ जाकर प्रत्येक धामका दर्शन कराया।

तीसरे दिन जब लोग चलने लगे तो वह स्टेशनतक पहुँचाने आया। जब गाड़ीने सीटी दी तो उसने सजल नेत्रोंसे पंडितजीके चरण छुए और बोला—कभी कभी इस सेवकको याद करते रहियेगा।

पण्डितजी घर पहुँचे तो उनके स्वभावमें बड़ा परिवर्तन हो गया था। उन्होंने फिर किसी दूसरे विभागमें जानेकी चेष्टा नही की।

सचाईका उपहार—

[१]

तहसीली मदरसा बरॉवके प्रथमाध्यापक मुन्शी भवानी-सहायको बागवानीका कुछ व्यसन था। क्यारियोंमें भाति भातिके फूल और पत्तियॉ लगा रखी थीं। दरवाजोंपर लतायें चढ़ा दी थी। इससे मदरसेकी शोभा अधिक हो गई थी। वह मिडिल कक्षाके लडकोंसे भी अपने बगीचेके सीचने और साफ करनेमें

मदद लिया करते थे। अधिकाश लड़के इस कामको रुचिपूर्वक करते। इससे उनका मनोरंजन होता था। किन्तु दरजेमें चार-पाँच लड़के जमीदारोंके थे। उनमे ऐसी दुर्जनता थी कि यह मनोरंजक कार्य भी उन्हें बेगार प्रतीत होता। उन्होंने बाल्यकाल-से आलस्यमें जीवन व्यतीत किया था। अमीरीका झूठा अभिमान दिलमें भरा हुआ था। वह हाथमे कोई काम करना निन्दाकी बात समझते थे। उन्हे इस बगीचेमे घृणा थी। जब उनके काम करनेकी बारी आती तो कोई-न कोई बहाना करके उड़ जाते। इतना ही नहीं, दूसरे लड़कोंको बहकाते और कहते-वाह! पढ़ें फारसी, बेचें तेल! यदि खुरपी कुदाल ही करना है तो मदरसेमें किताबोंसे सिर मारनेकी क्या जरूरत? यहाँ पढ़ने आते हैं, कुछ मजूरी करने नहीं आते। मुन्शीजी इस अवज्ञा के लिए उन्हें कभी-कभी दण्ड दे देते थे। इससे उनका द्वेष और भी बढ़ता था। अन्तमें यहाँतक नौबत पहुँची कि एक दिन उन लड़कोंने सलाह करके उस पुष्पवाटिकाको विध्वंस करनेका निश्चय किया। दस बजे मदरसा लगता था, किन्तु उस दिन वह आठ ही बजे आ गये और बगीचेमें घुसकर उसे उजाड़ने लगे। कहीं पौधे उखाड़ फेंके, कही क्यारियोंको रौंद डाला, पानीकी नालियाँ तोड़ डाली, क्यारियोंकी मेड़ें खोद डालीं। मारे भयके छाती धड़क रही थी कि कहीं कोई देखता न हो। लेकिन एक छोटी-सी फुलवारीको उजाड़ते कितनी देर लगती है? दस मिनिट-में हरा-भरा बाग नष्ट हो गया। तब यह लड़के शीघ्रतासे निकले, लेकिन दरवाजेतक आये थे कि उन्हें अपने एक सहपाठीकी सूरत दिखाई दी। यह एक दुबला, पतला, दरिद्र और चतुर

लड़का था। उसका नाम बाजबहादुर था। बड़ा गम्भीर, शान्त लड़का था। ऊधम पार्टीके लड़के उससे जलते थे। उसे देखते ही उनका रक्त सूख गया। विश्वास हो गया कि इसने जरूर देख लिया। यह मुन्शीजीसे कहे बिना न रहेगा। बुरे फँसे आज कुशल नहीं है। यह राक्षस इस समय यहाँ क्या करने आया था। आपसमें इशारे हुए। यह सलाह हुई कि इसे मिला लेना चाहिये। जगतसिंह उनका मुखिया था। आगे बढ़कर बोला—आज इतने सवेरे कैसे आ गये? हमने तो आज तुम लोगोंके गलेकी फाँसी छुड़ा दी। लाला बहुत दिक किया करते थे, यह करो, वह करो। मगर यार देखो, कहीं मुन्शीजीसे जड मत देना, नहीं तो लेनेके देने पड़ जायँगे।

जयरामने कहा—कह क्या देंगे अपने ही तो हैं, हमने जो कुछ किया है वह सबके लिये किया है, केवल अपनी ही भलाईके लिये नहीं। चलो यार, तुम्हें बाजारकी सैर करा दें, मुँह मीठा करा दें।

बाजबहादुरने कहा—नहीं, मुझे आज घरपर पाठ याद करनेका अवकाश नहीं मिला। यहीं बैठकर पढ़ूँगा।

जगतसिंह—अच्छा, मुन्शीजीसे कहोगे तो न?

बाजबहादुर—मैं स्वयम् कुछ न कहूँगा, लेकिन उन्होंने मुझसे पूछा तो?

जगतसिंह—कह देना मुझे नहीं मालूम।

बाजबहादुर—यह झूठ मुझसे न बोला जायगा।

जयराम—अगर तुमने चुगुली खाई और हमारे ऊपर मार पड़ी तो हम तुम्हें पीटे बिना न छोड़ेंगे।

बाजबहादुर—हमने कह दिया कि चुगली न खायँगे लेकिन मुन्शीजीने पूछा तो झूठ भी न बोलेंगे।

जयराम—तो हम तुम्हारी हड्डियाँ भी तोड़ देंगे।

बाजबहादुर—इसका तुम्हे अधिकार है।

[२]

दस बजे जब मदरसा लगा और मुन्शी भवानीसहायने बागकी यह दुर्दशा देखी तो क्रोधसे आग हो गये। बागके उजड़नेका इतना खेद न था जितना लडकोंकी शरारतका। यदि किसी सॉडने यह दुष्कृत किया होता तो वह केवल हाथ मलकर रह जाते। किन्तु लडकोके इस अत्याचारको सहन न कर सके। ज्योंही लडके दरजेमें बैठ गये, वह तीवर बदले हुए आये और पूछा—यह बाग किसने उजाडा है?

कमरेमें सन्नाटा छा गया। अपराधियोंके चेहरोपर हवाइयाँ उड़ने लगी। मिडल कक्षाके २५ विद्यार्थियोमें कोई ऐसा न था जो इस घटनाको न जानता हो, किन्तु किसीमे यह साहस न था कि उठकर साफ साफ कह दे। सब के सब सिर झुकाये मौन धारण किये बैठे थे।

मुन्शीजीका क्रोध और भी प्रचड हुआ। चिल्लाकर बोले—मुझे विश्वास है कि यह तुम्ही लोगोंमेंसे किसीकी शरारत है। जिसे मालूम हो स्पष्ट कह दे, नही तो मै एक सिरेसे पीटना शुरू करूँगा, फिर कोई यह न कहे कि हम निरपराध मारे गये।

एक लड़का भी न बोला। वही सन्नाटा!

मुन्शीजी—देवीप्रसाद, तुम जानते हो?

देवी—जी नहीं, मुझे कुछ नहीं मालूम ।

'शिवदास, तुम जानते हो ?'

'जी नहीं, मुझे कुछ नहीं मालूम ।'

'बाजबहादुर, तुम कभी झूठ नहीं बोलते, तुम्हें मालूम है ?'

बाजबहादुर खड़ा हो गया, उसके मुख-मण्डलपर वीरत्वका प्रकाश था । नेत्रोंमे साहस झलक रहा था । बोला—जी हाँ !

मुन्शीजीने कहा—शाबाश !

अपराधियोंने बाजबहादुरकी ओर रक्तवर्ण आँखोंसे देखा और मनमें कहा—अच्छा !

[३]

भवानीसहाय बड़े धैर्यवान मनुष्य थे । यथाशक्ति लड़कोंको यातना नहीं देते थे । किन्तु ऐसी दुष्टताका दंड देनेमें वह लेश-मात्र भी दाया न दिखाते थे । छड़ी मँगाकर पाँचों अपराधियोंको दस-दस छड़ियाँ लगाईं, सारे दिन बेंचपर खड़ा रखा और चालचलनके रजिस्टरमें उनके नामके सामने काले चिह्न बना दिये ।

बाजबहादुरसे शरारत पार्टीवाले लड़के योंही जला करते थे, आज उसकी सचाईके कारण उसके खूनके प्यासे हो गये । यन्त्रणामें सहानुभूति पैदा करनेकी शक्ति होती है । इस समय दरजेके अधिकाश लड़के अपराधियोंके मित्र हो रहे थे । उनमें षड्यन्त्र रचा जाने लगा कि आज बाजबहादुरकी खबर ली जाय । ऐसा मारो कि फिर मदरसेमें मुँह न दिखावे । यह हमारे घरका भेदी है । दगाबाज ! बड़ा सच्चेकी दुम बना है ! आज इस सचाईका हाल मालूम हो जायगा । बेचारे बाजबहादुरको

इस गुप्तलीलाकी जरा भी खबर न थी। विद्रोहियोंने उसे अन्धकारमें रखनेका पूरा यत्न किया था।

छुट्टी होनेके बाद बाजबहादुर घरकी तरफ चला। रास्तेमें एक अमरूदका बाग था। वहाँ जगतसिंह और जयराम कई लड़कोंके साथ खडे थे। बाजबहादुर चौका, समझ गया कि यह लोग मुझे छेड़नेपर उतारू हैं। किन्तु बचनेका कोई उपाय न था। कुछ हिचकता हुआ आगे बढ़ा। जगतसिंह बोला—आओ लाल! बहुत राह दिखाई। आओ सचाईका इनाम लेते जाओ।

बाजबहादुर—रास्तेसे हट जाओ, मुझे जाने दो।

जयराम—जरा सचाईका मजा तो चखते जाइये।

बाजबहादुर—मैंने तुमसे कह दिया था कि जब मेरा नाम लेकर पूछेंगे तो मै बता दूँगा।

जयराम—हमने भी तो कह दिया था कि तुम्हें इस कामका इनाम दिये बिना न छोड़ेंगे।

यह कहते ही वह बाजबहादुरकी तरफ घूँसा तानकर बढ़ा। जगतसिंहने उसके दोनों हाथ पकड़ने चाहे। जयरामका छोटा भाई शिवराम अमरूदकी एक टहनी लेकर झपटा। शेष लड़के चारों तरफ खड़े होकर तमाशा देखने लगा। यह 'रिजर्व' सेना थी जो आवश्यकता पड़नेपर मित्रदलकी सहायताके लिये तैयार थी। बाजबहादुर दुर्बल लड़का था। उसकी मरम्मत करनेको वह तीन मजबूत लड़के काफी थे। सब लोग यही समझ रहे थे कि क्षण भरमें यह तीनों उसे गिरा लेंगे। बाजबहादुरने जब देखा कि शत्रुओंने शस्त्रप्रहार करना शुरू कर दिया। उसने कनखियोंसे इधर उधर देखा। तब तेजीसे झपटकर शिवरामके हाथसे अमरूद-

की टहनी छीन ली और दो कदम पीछे हटकर टहनी ताने हुए बोला—तुम मुझे सचाईका इनाम या सजा देनेवाले कौन होते हो ?

दोनो ओरसे दाँव-पेच होने लगे। बाजबहादुर था तो कम-जोर, पर अत्यन्त चपल और सतर्क था, उसपर सत्यका विश्वास हृदयको और भी बलवान बनाए हुए था। सत्य चाहे सिर कटा दे, लेकिन कदम पीछे नहीं हटाता। कई मिनटतक बाजबहादुर उछल-उछलकर वार करता और हटाता रहा। लेकिन अमरूदकी टहनी कहाँतक थाम सकती। जरा देरमें उसकी धज्जियाँ उड़ गयीं। जबतक उसके हाथमें वह हरी तलवार रही कोई उसके निकट आनेकी हिम्मत न करता था। निहत्था होनेपर भी वह ठोकरों और घूँसोंसे जवाब देता रहा। मगर अन्तमें अधिक संख्याने विजय पायी। बाजबहादुरकी पसलीमें जयरामका एक घूँसा ऐसा पड़ा कि वह बेदम होकर गिर पड़ा। आँखें पथरा गयी और मूर्च्छासी आ गयी। शत्रुओंने यह दशा देखी तो उनके हाथोंके तोते उड़ गए। समझे इसकी जान निकल गयी। बेतहाशा भागे।

[४]

कोई दस मिनटके पीछे बाजबहादुर सचेत हुआ। कलेजे पर चोट लग गयी थी। घाव ओछा पड़ा था, तिसपर भी खड़े होनेकी शक्ति न थी। साहस करके उठा और लंगड़ाता हुआ घरकी ओर चला।

उधर यह विजयी दल भागते-भागते जयरामके मकानपर

पहुँचा। रास्ते हीमें सारा दल तितर बितर हो गया। कोई इधरसे निकल भागा कोई उधरसे, कठिन समस्या आ पड़ी थी। जयरामके घरतक केवल तीन सुदृढ लडके पहुँचे। वहाँ पहुँचकर उनकी जान-में-जान आयी।

जयराम—कही मर न गया हो, मेरा घूँसा खूब बैठ गया था।

जगतसिंह—तुम्हें पसलीमें नही मारना चाहिये था। अगर तिल्ली फट गयी होगी तो न बचेगा।

जयराम—यार मैने जानके थोड़े ही मारा था। सयोग ही था। अब बताओ क्या किया जाय?

जगतसिंह—करना क्या है चुपचाप बैठे रहो।

जयराम—कही मै अकेला तो न फँसूँगा?

जगतसिंह—अकेले कौन फँसेगा, सब के सब साथ चलेंगे।

जयराम—अगर बाजबहादुर मरा नहीं है तो उठकर सीधे मुन्शीजीके पास जायगा।

जगतसिंह—और मुन्शीजी कल हम लोगोंकी खाल अवश्य उधेड़ेंगे।

जयराम—इसलिये मेरी सलाह है कि कलसे मदरसे जाओ ही नही। नाम कटाके दूसरी जगह चले चले। नही तो बीमारीका बहाना करके बैठे रहें। महीने दो महीनेके बाद जब मामला ठण्ढा पड़ जायगा तो देखा जायगा।

शिवराम—और जो परीक्षा होनेवाली है?

जयराम—ओ हो! इसका तो खयाल ही न था। एक ही महीना तो और रह गया है।

जगतसिंह—तुम्हें अबकी जरूर वजीफा मिलता।

जयराम—हॉ मैंने बहुत परिश्रम किया था। तो फिर?

जगतसिंह—कुछ नही तरक्की तो हो ही जायगी। वजीफेसे हाथ धोना पड़ेगा।

जयराम—बाजबहादुरके हाथ लग जायगा।

जगतसिंह—बहुत अच्छा होगा, बेचारेने मार भी तो खायी है।

दूसरे दिन मदरसा लगा। जगतसिंह, जयराम और शिवराम तीनों गायब थे। वलीमहम्मद पैरमे पट्टी बॉधे आये थे, लेकिन भयके मारे बुरा हाल था, कलके दर्शकगण भी थरथरा रहे थे कि कही हमलोग भी गेहूॅके साथ घुनकी तरह न पिस जायॅ। बाजबहादुर नियमानुसार अपने काममे लगा हुआ था। ऐसा मालूम होता था कि मानों उसे कलकी बातें याद ही नहीं हैं। किसीसे उनकी चर्चा न की। हॉ, आज वह अपने स्वभावके प्रतिकूल कुछ प्रसन्नचित्त देख पड़ता था। विशेषतः कलके योद्धाओंसे वह अधिक हिलामिला हुआ था। वह चाहता था कि यह लोग मेरी ओरसे निःशङ्क हो जायॅ। रातभरकी विवेचनाके पश्चात् उसने यही निश्चय किया था और आज जब सन्ध्या समय वह घर चला तो उसे अपनी उदारताका फल मिल चुका था। उसके शत्रु लज्जित थे और उसकी प्रशसा करते थे।

मगर यह तीनो अपराधी दूसरे दिन भी न आये, तीसरे दिन भी उनका कही पता न था। वह घरसे मदरसेको चलते लेकिन देहातकी तरफ निकल जाते। वहॉ दिन भर किसी वृक्षके नीचे बैठे रहते, अथवा गुल्ली डण्डे खेलते। शामको घर चले आते।

उन्होंने यह पता तो लगा लिया था कि इस समरके अन्य सभी योद्धागण मदरसे आते हैं और मुन्शीजी उनसे कुछ नहीं बोलते, किन्तु चित्तसे शङ्का दूर न होती थी। बाजबहादुरने जरूर कहा होगा। हम लोगोंके जानेकी देर है। गये और बेभावकी पड़ी। यही सोचकर मदरसे आनेका साहस न कर सकते थे।

[५]

चौथे दिन प्रातःकाल तीनों अपराधी बैठे सोच रहे थे कि आज किधर चलना चाहिये। इतनेमें बाजबहादुर आता हुआ दिखाई दिया। इन लोगोंको आश्चर्य तो हुआ परन्तु उसे अपने द्वारपर आते देखकर कुछ आशा बँध गयी। यह लोग अभी बोलने भी न पाये थे कि बाजबहादुरने कहा—क्यों मित्रों, तुम लोग मदरसे क्यों नहीं आते? तीन दिनसे गैरहाजिरी हो रही है।

जगतसिंह—मदरसे क्या जायँ, जान भारी पड़ी है? मुन्शीजी एक हड्डी भी तो न छोड़ेंगे।

बाजबहादुर—क्यों, वलीमुहम्मद, दुर्गा, सभी तो जाते हैं। मुन्शीजीने किसीसे भी कुछ कहा?

जयराम—तुमने उन लोगोंको छोड़ दिया होगा, लेकिन हमें भला तुम क्यों छोड़ने लगे। तुमने एक-एक की तीन-तीन जड़ी होगी।

बाज़बहादुर—आज मदरसे चलकर इसकी परीक्षा ही कर लो।

जगतसिंह—यह झाँसे रहने दीजिये। हमें पिटवानेकी चाल है।

बाजबहादुर—तो मैं कहीं भागा तो नहीं जाता? उस दिन

सचाई की सजा दी थी, आज झूठका इनाम दे देना।

जयराम—सच कहते हो तुमने शिकायत नहीं की?

बाजबहादुर—शिकायतकी कौन बात थी। तुमने मुझे मारा, मैंने तुम्हे मारा। अगर तुम्हारा घूँसा न पड़ता तो मैं तुम लोगोंको रणक्षेत्रसे भगाकर दम लेता। आपसके झगड़ोंकी शिकायत करनेकी मेरी आदत नहीं है।

जगतसिंह—चलूँ तो यार, लेकिन विश्वास नहीं आता, तुम हमें झासे दे रहे हो, कचूमर निकलवा लोगे।

बाजबहादुर—तुम जानते हो झूठ बोलनेकी मेरी बान नहीं है।

यह शब्द बाजबहादुरने ऐसी विश्वासोत्पादक रीतिसे कहे कि उन लोगोंका भ्रम दूर हो गया। बाजबहादुरके चले जानेके पश्चात् तीनों देर तक उसकी बातोंकी विवेचना करते रहे। अन्तमें यही निश्चय हुआ कि आज चलना चाहिये।

ठीक दस बजे तीनों मित्र मदरसे पहुँच गये, किन्तु चित्तमें आशंकित थे। चेहरेका रङ्ग उड़ा हुआ था।

मुन्शीजी कमरेमें आये। लड़कोंने खड़े होकर उनका स्वागत किया, उन्होंने तीनों मित्रोंकी ओर तीव्र दृष्टिसे देखकर केवल इतना कहा—तुम लोग तीन दिनसे गैरहाजिर हो। देखो दरजेमें जो इम्तहानी सवाल हुए हैं उन्हें नकल कर लो।

फिर पढ़ानेमें मग्न हो गये।

[६]

जब पानी पीनेके लिये लड़कोंको आध घंटेका अवकाश

मिला तो तीनों मित्र और उनके सहयोगी जमा होकर बातें करने लगे।

जयराम—हम तो जानपर खेलकर मदरसे आये थे, मगर बाजबहादुर है बातका धनी।

वलीमुहम्मद—मुझे तो ऐसा मालूम होता है वह आदमी नहीं देवता है। यह आँखों देखी बात न होती तो मुझे कभी इसपर विश्वास न आता।

जगतसिंह—भलमनसी इसीको कहते हैं। हमसे बड़ी भूल हुई कि उसके साथ ऐसा अन्याय किया।

दुर्गा—चलो उससे क्षमा मागें।

जयराम– हाँ, यह तुम्हे खूब सूझी। आज ही।

जब मदरसा बन्द हुआ तो दरजेके सब लड़के मिलकर बाजबहादुरके पास गये। जगतसिंह उनका नेता बनकर बोला—भाई साहब हम सब-के सब तुम्हारे अपराधी हैं। तुम्हारे साथ हम लोगोने जो अत्याचार किया है, उसपर हम हृदयसे लज्जित हैं। हमारा अपराध क्षमा करो। तुम सज्जनताकी मूर्ति हो, हम लोग उजड्ड, गँवार और मूर्ख हैं, हमें अब क्षमा प्रदान करो।

बाजबहादुरकी आँखोंमें आँसू भर आये, बोला—मै पहले भी तुम लोगोंको अपना भाई समझता था और अब भी वही समझता हूँ। भाइयोंके झगडेमें क्षमा कैसी?

सब-के-सब उससे गले मिले। इसकी चर्चा सारे मदरसेमें फैल गयी। सारा मदरसा बाजबहादुरकी पूजा करने लगा। वह अपने मदरसेका मुखिया, नेता और शिरमौर बन गया।

एक दिन मैं चारपाईपर लेटा हुआ एक पत्र पढ़ रहा था कि मुझे एक माँग अपनी इच्छाके अनुसार दिखाई दी। किसी रईस-को एक ऐसे प्राइवेट सेक्रेटरीकी जरूरत थी जो विद्वान्, रसिक, सहृदय और रूपवान हो। वेतन एक हजार मासिक ! मैं उछल पड़ा। कहीं मेरा भाग्य उदय हो जाता और यह पद मुझे मिल जाता तो जिन्दगी चैनसे कट जाती। उसी दिन मैंने अपना विनयपत्र अपने फोटोके साथ रवाना कर दिया, पर अपने आत्मीय गणोंमें किसीसे इसका जिक्र न किया कि कहीं लोग मेरी हँसी न उड़ाये। मेरे लिये ३०) मासिक भी बहुत थे। एक हजार कौन देगा ? पर दिलसे यह ख्याल दूर न होता। बैठे बैठे शेख चिल्लीके मन्सूबे बाँधा करता। फिर होशमें आकर अपनेको समझाता कि मुझमें ऐसे ऊँचे पदके लिए कौन सी योग्यता है। मै अभी कालेजसे निकला हुआ पुस्तकोंका पुतला हूँ। दुनियाँसे बेखबर ! इस पदके लिए एक-से-एक विद्वान, अनु-भवी पुरुष मुँह फैलाये बैठे होंगे। मेरे लिये कोई आशा नहीं। मैं रूपवान सही, सजीला सही, मगर ऐसे पदोंके लिये केवल रूपवान होना काफी नहीं होता। विज्ञापनमें इसकी चर्चा करनेसे केवल इतना अभिप्राय होगा कि कुरूप आदमीकी जरूरत नहीं, और उचित भी है। बल्कि बहुत सजीलापन तो ऊँचे पदोंके लिये कुछ शोभा नहीं देता। मध्यम श्रेणीका तोंद, भरा हुआ शरीर, फूले हुए गाल और गौरवयुक्त वाक्य शैली यह उच्चपद-धारियोंके लक्षण हैं और मुझे इनमेंसे एक भी मयस्सर नहीं। इसी आशा और भयमें एक सप्ताह गुजर गया और अब मैं निराश हो गया। मैं भी कैसा ओछा हूँ कि एक बे सिर-पैरकी

बातके पीछे ऐसा फूल उठा, इसीको लड़कपन कहते हैं। जहाँ तक मेरा ख्याल है, किसी दिल्लगीबाजने आजकल शिक्षित समाजकी मूर्खताकी परीक्षा करनेके लिये यह स्वाग रचा है। मुझे इतना भी न सूझा। मगर आठवें दिन प्रातःकाल तारके चपरासीने मुझे आवाज दी। मेरे हृदयमें गुदगुदी-सी होने लगी। लपका हुआ आया। तार खोलकर देखा, लिखा था-- स्वीकार है, शीघ्र आओ ऐशगढ।

मगर यह सुख सम्वाद पाकर मुझे वह आनन्द न हुआ जिसकी आशा थी। मैं कुछ देरतक खड़ा सोचता रहा, किसी तरह विश्वास न आता था। जरूर किसी दिल्लगीबाजकी शरारत है। मगर कोई मुजायका नहीं, मुझे भी इसका मुहताड़ जवाब देना चाहिये। तार दे दूँ कि एक महीनेकी तनख्वाह भेज दो। आप ही सारी कलई खुल जायगी। मगर फिर विचार किया, कहीं वास्तवमें नसीब जगा हो तो इस उद्दण्डतासे बना-बनाया खेल बिगड़ जायगा। चलो दिल्लगी ही सही। जीवनमें यह घटना भी स्मरणीय रहेगी। तिलस्मको खोल ही डालूँ। यह निश्चय करके तार द्वारा अपने आनेकी सूचना दे दी और सीधे रेलवे स्टेशनपर पहुँचा। पूछनेपर मालूम हुआ कि यह स्थान दक्खिनकी ओर है। टाइमटेबुलमें उसका वृत्तान्त विस्तारके साथ लिखा था। स्थान अति रमणीय है, पर जलवायु स्वास्थ्य-कर नहीं। हाँ, हृष्टपुष्ट नवयुवकोंपर उसका असर शीघ्र नहीं होता। दृश्य बहुत मनोरम है पर जहरीले जानवर बहुत मिलते हैं। यथासाध्य अन्धेरी घाटियोंमें न जाना चाहिये। यह वृत्तान्त पढ़कर उत्सुकता और भी बढ़ी। जहरीले जानवर हैं तो हुआ

करें, कहाँ नही हैं। मै अन्धेरी घाटियोंके पास भूलकर भी न जाऊँगा। आकर सफरका सामान ठीक किया और ईश्वरका नाम लेकर नियत समयपर स्टेशनकी तरफ चला, पर अपने आलापी मित्रोंसे इसका कुछ जिक्र न किया, क्योकि मुझे पूरा विश्वास था कि दो ही चार दिनमे फिर अपना सा मुँह लेकर लौटना पडेगा।

[२]

गाडीपर बैठा तो शाम हो गयी थी। कुछ देरतक तो सिगार और पत्रोंसे दिल बहलाता रहा। फिर मालूम नहीं कब नींद आ गयी। आँखे खुली और खिड़कीसे बाहरकी तरफ झाँका तो उषाकालका मनोहर दृश्य दिखाई दिया। दोनों ओर हरे वृक्षोंसे ढकी हुई पर्वत श्रेणियाँ, उनपर चरती हुई उजली-उजली गाये और भेडे, सूर्यकी सुनहरी किरणोंमे रँगी हुई बहुत सुन्दर मालूम होती थी। जी चाहता था कि कहीं मेरी कुटिया भी इन्ही सुखद पहाडियोमे होती, जङ्गलके फल खाता, झरनोंका ताजा पानी पीता और आनन्दके गीत गाता। यकायक दृश्य बदला, कही उजले-उजले पक्षी तैरते थे और कही छोटी-छोटी डोंगिया निर्बल आत्माओके सदृश डगमगाती हुई चली जाती थी। यह दृश्य भी बदला। पहाडियोंके दामनमे एक गाँव नजर आया, झाडियो और वृक्षोंसे ढका हुआ, मानो शान्ति और सन्तोषने यहाँ अपना निवासस्थान बनाया हो। कही बच्चे खेलते थे, कही गायके बछडे किलोले करते थे। फिर एक घना जगल मिला। झुड के झुड हिरन दिखाई दिये जो गाड़ीकी हाहाकार

सुनतेही चौकड़ियाँ भरते दूर भाग जाते थे। यह सब दृश्य स्वप्न के चित्रोंके समान आँखोंके सामने आते थे और एक क्षणमें गायब हो जाते थे। उनमें एक अवर्णनीय शान्तिदायिनी शोभा थी जिससे हृदयमें आकाक्षाओंके आवेग उठने लगते थे।

आखिर ऐशगढ़ निकट आया। मैने बिस्तर सँभाला। जरा देरमे सिग्नल दिखाई दिया। मेरी छाती धड़कने लगी। गाडी रुकी। मैंने उतरकर इधर-उधर देखा, कुलियोंको पुकारने लगा कि इतनेमे दो वरदी पहने हुए आदमियोने आकर मुझे सादर सलाम किया और पूछा—'आप · से आ रहे हैं न, चलिये मोटर तैयार है।' मेरी बाछे खिल गयी। अबतक कभी मोटरपर बैठनेका सौभाग्य न हुआ था। शानके साथ जा बैठा। मनमें बहुत लज्जित था कि ऐसे फटे हाल क्यो आया, अगर जानता कि सचमुच सौभाग्य सूर्य्य चमका है तो ठाटबाटसे आता। खैर मोटर चली, दोनों तरफ मौलसरीके सघन वृक्ष थे। सडकपर लाल बजरी बिछी हुई थी। सड़क हरे-भरे मैदानमे किसी सुरम्य जलधाराके सदृश बल खाती चली गयी थी। दस मिनट भी न गुजरे होंगे कि सामने एक शान्तिमय सागर दिखाई दिया। सागरके उस पार पहाड़ीपर एक विशाल भवन बना हुआ था। भवन अभिमानसे सिर उठाये हुए था, सागर सन्तोषसे नीचे लेटा हुआ, सारा दृश्य काव्य शृङ्गार, और आमोदसे भरा हुआ था।

हम सदर दरवाजेपर पहुँचे, कई आदमियोंने दौडकर मेरा स्वागत किया। इनमें एक शौकीन मुन्शीजी थे, जो बाल सँवारे आँखोंमें सुर्मा लगाए हुए थे। मेरे लिए जो कमरा सजाया गया

था उसके द्वारपर मुझे पहुँचाकर बोले—सरकारने फरमाया है, इस समय आप आराम करें, सन्ध्या समय मुलाकात कीजियेगा।

मुझे अबतक इसकी कुछ खबर न थी कि यह 'सरकार' कौन हैं, न मुझे किसीसे पूछनेका साहस हुआ, क्योंकि अपने स्वामीके नामतकसे अनभिज्ञ होनेका परिचय नहीं देना चाहता था। मगर इसमें कोई सन्देह नहीं कि मेरा स्वामी बड़ा सज्जन मनुष्य था। मुझे इतने आदर सत्कारकी कदापि आशा न थी। अपने सुसज्जित कमरेमें जाकर जब मैं एक आराम-कुरसीपर बैठा तो हर्षसे विह्वल हो गया। पहाड़ियोंकी तरफसे शीतल वायुके मन्द-मन्द झोंके आ रहे थे। सामने छज्जा था। नीचे झील थी, साँपके केंचुलके सदृश और प्रकाशसे पूर्ण, और मैं, जिसे भाग्य देवीने सदैव अपना सौतेला लड़का समझा था इस समय जीवनमें पहली बार निर्विघ्न आनन्दका सुख उठा रहा था।

तीसरे पहर उन्हीं शौकीन मुन्शीजीने आकर इत्तला दी कि सरकारने याद किया है। मैंने इस बीचमें बाल बना लिये थे। तुरन्त अपना सर्वोत्तम सूट पहना और मुन्शीजीके साथ सरकार की सेवामें चला। इस समय मेरे मनमें यह शङ्का उठ रही थी कि कहीं मेरी बातचीतसे स्वामी असन्तुष्ट न हो जायँ और उन्होंने मेरे विषयमें जो विचार स्थिर किया हो उसमें कोई अन्तर न पड़ जाय तथापि मैं अपनी योग्यताका परिचय देनेके लिए खूब तैयार था। हम कई बरामदोंसे होते अन्तमें सरकारके कमरेके दरवाजेपर पहुँचे। रेशमी परदा पड़ा हुआ था। मुन्शीजीने परदा

उठाकर मुझे इशारेसे बुलाया। मैंने काँपते हुए हृदयसे कमरेमें कदम रखा और आश्चर्यसे चकित हो गया! मेरे सामने सौन्दर्यकी एक ज्वाला दीप्तिमान थी।

[३]

फूल भी सुन्दर है और दीपक भी सुन्दर है। फूलमें ठंडक और सुगन्धि है, दीपकमें प्रकाश और उद्दीपन। फूलपर भ्रमर उड़-उड़कर उसका रस लेता है, दीपकपर पतङ्ग जलकर राख हो जाता है। मेरे सामने कारचोबी मसनदपर जो सुन्दरी विराजमान थी, वह सौन्दर्यकी एक प्रकाशमय ज्वाला थी। फूलकी पँखड़ियाँ हो सकती हैं, ज्वालाको विभक्त करना असम्भव है। उसके एक एक अङ्गकी प्रशंसा करना ज्वालाको काटना है। वह नख सिख एक ज्वाला थी, वही दीपन, वही चमक, वही लालिमा, वही प्रभा। कोई चित्रकार प्रतिमा सौन्दर्यका इससे अच्छा चित्र नहीं खींच सकता था। रमणीने मेरी तरफ वात्सल्य दृष्टिसे देखकर कहा—आपको सफरमें कोई विशेष कष्ट तो नही हुआ?

मैंने सँभलकर उत्तर दिया—जी नही, कोई कष्ट नहीं हुआ।

रमणी—यह स्थान पसन्द आया?

मैंने साहसपूर्ण उत्साहके साथ जवाब दिया—ऐसा सुन्दर स्थान पृथ्वीपर न होगा। हाँ, गाइडबुक देखनेसे विदित हुआ कि यहाँका जलवायु जैसा सुखद प्रकट होता है यथार्थमें वैसा नहीं, विषैले पशुओंकी भी शिकायत है।

यह सुनते ही रमणीका मुखसूर्य्य कान्तिहीन हो गया। मैंने तो यह चर्चा इसलिये कर दी थी, जिससे प्रकट हो जाय कि यहाँ

आनेमे मुझे भी कुछ त्याग करना पड़ा है, पर मुझे ऐसा मालूम हुआ कि इस चर्चासे उसे कोई विशेष दुःख हुआ। पर क्षणभरमें सूर्य मेघमडलसे बाहर निकल आया, बोली—यह स्थान अपनी रमणीयताके कारण बहुधा लोगोकी ऑखोंमे खटकता है। गुणका निरादर करनेवाले सभी जगह होते हैं और यदि जलवायु कुछ हानिकर हो भी तो आप जैसे बलवान मनुष्यको इसकी क्या चिन्ता हो सकती है। रहे विषैले जीव जन्तु, वह आपके नेत्रोंके सामने विचर रहे हैं। अगर मोर, हिरन और हस विषैले जीव है तो निस्सन्देह यहॉ विषैले जीव बहुत है।

मुझे सशय हुआ, कही मेरे कथनसे उसका चित्त खिन्न न हो गया हो। गर्वसे बोला—इन गाइड बुकोंपर विश्वास करना सर्वथा भूल है।

इस वाक्यसे सुन्दरीका हृदय खिल गया, बोली—आप स्पष्ट-वादी मालूम होते हैं और यह मनुष्यका एक उच्च गुण है। मै आपका चित्र देखते ही इतना समझ गयी थी। आपको यह सुन कर आश्चर्य होगा कि इस पदके लिये मेरे पास एक लाखसे अधिक प्रार्थनापत्र आये थे। कितने ही एम० ए० थे, कोई डी० एस० सी० था, कोई जर्मनीसे पी० एच० डी० उपाधि प्राप्त किये हुए था, मानो यहॉ मुझे किसी दार्शनिक विषयकी जॉच करनी थी। मुझे अबको ही यह अनुभव हुआ कि देशमे उच्च-शिक्षित मनुष्योंकी इतनी भरमार है। कई महाशयोंने स्वरचित ग्रथोंकी नामावली लिखी थी, मानों देशमें लेखकों और पडितों हीकी आवश्यकता है। उन्हें कालगतिका लेशमात्र भी परिचय नही है। प्राचीन धर्मकथाये अब केवल अन्धभक्तोंके रसास्वादन

के लिये ही हैं, उनसे और कोई लाभ नही है। यह भौतिक उन्नतिका समय है। आजकल लोग भौतिक सुखपर अपने प्राण अर्पण कर देते हैं। कितने ही लोगोंने अपने चित्र भी भेजे थे। कैसी कैसी विचित्र मूर्त्तियॉ थी जिन्हे देखकर घण्टों हॅसिये। मैंने उन सभोंको एक अलबममे लगा लिया है और अवकाश मिलने-पर जब हॅसनेकी इच्छा होती है तो उन्हें देखा करती हूॅ। मैं उस विद्याको रोग समझती हूॅ जो मनुष्यको बनमानुष बना दे। आपका चित्र देखते ही ऑखे मुग्ध हो गयी, तत्क्षण आपको बुलानेको तार दे दिया।

मालूम नही क्यो, अपने गुणस्वभावकी प्रशसाकी अपेक्षा हम अपने वाह्य गुणोकी प्रशसासे अधिक सन्तुष्ट होते हैं और एक सुन्दरीके मुखसे तो वह चलते हुए जादूके समान है। बोला यथासाध्य आपको मुझसे असन्तुष्ट होनेका अवसर न मिलेगा।

सुन्दरीने मेरी ओर प्रशसापूर्ण नेत्रोंसे देखकर कहा—इसका मुझे पहले हीसे विश्वास है। आइये अब कुछ कामकी बातें हो जायॅ। इस घरको आप अपना ही समझिये और सकोच छोड़कर आनन्दसे रहिये। मेरे भक्तोंकी सख्या बहुत है। वह ससारके प्रत्येक भागमें उपस्थित हैं और बहुधा मुझसे अनेक प्रकारकी जिज्ञासा किया करते हैं। उन सबको मैं आपके सुपुर्द करती हूँ। आपको उनमें भिन्न-भिन्न स्वभावके मनुष्य मिलेंगे। कोई मुझसे सहायता मॉगता है, कोई मेरी निन्दा करता है, कोई सराहता है, कोई गालियॉ देता है। इन सब प्राणियोंको सन्तुष्ट रखना आपका काम है। देखिये यह आजके पत्रोंका ढेर है। एक

महाशय कहते हैं—बहुत दिन हुए आपकी प्रेरणासे मै अपने बड़े भाईकी मृत्युके बाद उनकी सम्पत्तिका अधिकारी बन बैठा था। अब उनका पुत्र वयस प्राप्त कर चुका है और मुझसे अपने पिताकी जायदाद लौटाना चाहता है। इतने दिनोंतक उस सम्पत्तिका उपभोग करनेके पश्चात् अब उसका हाथसे निकालना अखर रहा है, आपकी इस विषयमें क्या सम्मत्ति है।' इनको उत्तर दीजिये कि इस समय कूट नीतिसे काम लो, अपने भतीजे को कपट प्रेमसे मिला लो और जब वह निःशंक हो जाय तो उससे एक सादे स्टाम्पपर हस्ताक्षर करा लो। इसके पीछे पटवारी और अन्य कर्मचारियोंकी मददसे इसी स्टाम्पपर जायदादका बैनामा लिखा लो। यदि एक लगाकर दो मिलते हों तो आगा-पीछा मत करो।

यह उत्तर सुनकर मुझे बड़ा कौतूहल हुआ। नीति ज्ञानको धक्का सा लगा। सोचने लगा, यह रमणी कौन है और क्यों ऐसे अनर्थका परामर्श देती है। ऐसे खुल्लमखुल्ला तो कोई वकील भी किसीको यह राय न देगा। उसकी ओर सन्देहात्मक भावसे देखकर बोला—यह तो सर्वथा न्यायविरुद्ध प्रतीत होता है।

कामिनी खिलखिलाकर हँस पड़ी और बोली—न्यायकी आपने भली कही। यह केवल धर्मान्ध मनुष्योंका मनसमझौता है, संसारमें इसका अस्तित्व नहीं। बाप ऋण लेकर मर जाय, लड़का कौड़ी-कौड़ी भरे। विद्वान् लोग इसे न्याय कहते हैं, मै इसे घोर अत्याचार समझती हूँ। इस न्यायके परदेमे गाँठके पूरे महाजनकी हेकड़ी साफ झलक रही है। एक डाकू किसी भद्र पुरुषके घरमें डाका मारता है, लोग उसे पकड़कर कैद कर देते

हैं. धर्मात्मा लोग इसे भी न्याय कहते हैं, किन्तु यहाॅ भी वही धन और अधिकारकी प्रचण्डता है। भद्र पुरुषने कितने ही घरों को लूटा, कितनोंहीका गला दबाया और इस प्रकार धन संचय किया, किसीको भी उन्हे आॅख दिखानेका साहस न हुआ। डाकूने जब उनका गला दबाया तो वह अपने धन और प्रभुत्व-के बलसे उसपर वज्रप्रहार कर बैठे। मै इसे न्याय नही कहती। संसारमें धन, छल, कपट, धूर्त्तताका राज्य है, यही जीवन-सग्राम है। यहाॅ प्रत्येक साधन जिससे हमारा काम निकले, जिससें हम अपने शत्रुओंपर विजय पा सके, न्यायानुकूल और उचित है।" धर्मयुद्धके दिन अब नही रहे। वह देखिये, यह एक दूसरे सज्जनका पत्र है। वह कहते हैं—'मैंने प्रथम श्रेणीमे एम० ए० पास किया, प्रथम श्रेणीमें कानूनकी परीक्षा पास की, पर अब कोई मेरी बात भी नही पूछता। अबतक यह आशा थी कि योग्यता और परिश्रमका अवश्य ही कुछ फल मिलेगा पर तीन सालके अनुभवसे ज्ञात हुआ कि यह केवल धार्मिक नियम है। तीन सालमें घरकी पूॅजी भी खा चुका। अब विवश होकर आपकी शरण लेता हूॅ। मुझ हतभाग्य मनुष्यपर दया कीजिये और मेरा बेड़ा पार लगाइये।" इनको उत्तर दीजिये कि जाली दस्तावेजें बनवाइये और झूठे दावे चलाकर उनकी डिगरी करा लीजिये। थोड़े ही दिनोंमें आपका क्लेश निवारण हो जायगा। यह देखिये एक सज्जन और कहते हैं—"लड़की सयानी हो गयी है, जहाँ जाता हूँ लोग दायजकी गठरी माँगते हैं, यहाँ पेटकीरोटियोंका भी ठिकाना नहीं, किसी तरह भलमनसी निभा रहा हूँ, चारों ओर निन्दा हो रही है, जो आज्ञा हो उसका

पालन करूँ।" इन्हें लिखिये कन्याका विवाह किसी बुड्ढे खुर्राट सेठसे कर दीजिए। वह दायज लेनेकी जगह कुछ उल्टे और दे जायगा। अब आप समझ गये होंगे कि ऐसे जिज्ञासुओंको किस ढगसे उत्तर देनेकी आवश्यकता है। उत्तर संक्षिप्त होना चाहिये, बहुत टीका टिप्पणी व्यर्थ होती है। अभी कुछ दिनोंतक आपको यह काम कठिन जान पड़ेगा, पर आप चतुर मनुष्य हैं, शीघ्र आपको इस कामका अभ्यास हो जायगा। तब आपको मालूम होगा कि इससे सहज और कोई उपाय नहीं है। आपके द्वारा सैकड़ों दारुण दुःख भोगनेवालोंका कल्याण होगा और वह आजन्म आपका यश गायेंगे।

[४]

मुझे यहाँ रहते एक महीनेसे अधिक हो गया, पर अबतक मुझपर यह रहस्य न खुला कि यह सुन्दरी कौन है? मैं किसका सेवक हूँ? इसके पास इतना अतुल धन, ऐसी ऐसी विलासकी सामग्रियाँ कहाँसे आती हैं? जिधर देखता था, ऐश्वर्य हीका आडम्बर दिखाई देता था। मेरे आश्चर्यकी सीमा न थी मानों किसी तिलिस्ममें फँसा हूँ। इन जिज्ञासुओंका इस रमणीसे क्या सम्बन्ध है, यह भेद भी न खुलता था। मुझे नित्य उससे साक्षात् होता था, उसके सम्मुख आते ही मैं अचेत-सा हो जाता था। उसकी चितवनोंमें एक प्रबल आकर्षण था जो मेरे प्राणोंको खींच लिया करता था। मैं वाक्य-शून्य हो जाता, केवल छिपी हुई आँखोंसे उसे देखा करता था। पर मुझे उसके मृदुल मुस्कान और रसमयी आलोचनाओं तथा मधुर, काव्यमय भावोंमें प्रेमा-

नन्दकी जगह एक प्रबल मानसिक अशान्तिका अनुभव होता था। उसकी चितवनें केवल हृदयको वाणोंके समान छेदती थीं, उसके कटाक्ष चित्तको व्यस्त करते थे। शिकारी अपने शिकारको खेलानेमें जो आनन्द पाता है वही उस परम सुन्दरीको मेरी प्रेमातुरतामें प्राप्त होता था। वह एक सौन्दर्य ज्वाला थी और ज्वाला जलानेके सिवाय और क्या कर सकती है। तिसपर भी मैं पतंगकी भांति उस ज्वालापर अपनेको समर्पण करना चाहता था। यही आकांक्षा होती थी कि उन पद कमलोंपर सिर रखकर प्राण दे दूँ। यह केवल उपासककी भक्ति थी, काम और वासनाओंसे शून्य।

कभी कभी जब वह सन्ध्या समय अपने मोटर वोटपर बैठकर सागरकी सैर करती तो ऐसा जान पड़ता मानों चन्द्रमा आकाश-लालिमामें तैर रहा है। मुझे इस दृश्यमें अनुपम सुख प्राप्त होता था।

मुझे अब अपने नियत कार्योंमें खूब अभ्यास हो गया था। मेरे पास प्रतिदिन पत्रोंका एक पोथा पहुँच जाता था। मालूम नहीं किस डाकसे आता था। लिफाफोंपर कोई मोहर न होती थी। मुझे इन जिज्ञासुओंमें बहुधा वह लोग मिलते थे जिनका मेरी दृष्टिमें बड़ा आदर था, कितने ही ऐसे महात्मा थे जिनमें मुझे श्रद्धा थी। बड़े-बड़े विद्वान् लेखक और अध्यापक, बड़े बड़े ऐश्वर्यवान रईस, यहाँतक कि कितने ही धर्मके आचार्य, नित्य अपनी राम कहानी सुनाते थे। उनकी दशा अत्यन्त करुणाजनक थी। वह सब के-सब मुझे रंगे हुए सियार दिखाई देते थे। जिन लेखकोंको मैं अपनी भाषाका स्तम्भ समझता था उनसे घृणा

होने लगी। वह केवल उचक्के थे, जिनकी सारी कीर्त्ति चोरी, अनुवाद और कतर ब्यौतपर निर्भर थी। जिन धर्मके आचार्य्योंको मैं पूज्य समझता था वह स्वार्थ, तृष्णा और घोर नीचताके दलदलमें फँसे हुए दिखाई देते थे। मुझे धीरे-धीरे यह अनुभव हो रहा था कि संसारकी उत्पत्तिसे अबतक, लाखों शताब्दियाँ बीत जानेपर भी मनुष्य वैसा ही क्रूर, वैसा ही वासनाओंका गुलाम बना हुआ है। बल्कि उस समयके लोग सरल प्रकृतिके कारण इतने कुटिल, दुराग्रहोंमे इतने चालाक न होते थे।

एक दिन सन्ध्या समय उस रमणीने मुझे बुलाया। मै अपने घमण्डमें यह समझता था कि मेरे बाकेपनका कुछ न कुछ असर उसपर भी होता है। अपना सर्वोत्तम सूट पहना, बाल सँवारे और विरक्त भावसे जाकर बैठ गया। यदि वह मुझे अपना शिकार बना कर खेलती थी तो मैं भी शिकार बनकर उसे खेलाना चाहता था।

ज्योंही मैं पहुँचा उस लावण्यमयीने मुस्कराकर मेरा स्वागत किया, पर मुख चन्द्र कुछ मलीन था। मैने अधीर होकर पूछा—सरकारका जी तो अच्छा है ?

उसने निराशभावसे उत्तर दिया—जी हाँ, एक महीनेसे एक कठिन रोगमें फँस गयी हूँ। अबतक किसी भाँति अपनेको संभाल सकी हूँ, पर अब रोग असाध्य होता जाता है। उसकी औषधि एक निर्दय मनुष्यके पास है। वह मुझे प्रतिदिन तड़पते देखता है पर उसका पाषाण हृदय जरा भी नहीं पसीजता।

मै इशारा समझ गया। सारे शरीरमें एक बिजली-सी दौड़ गयी। साँस बड़े वेगसे चलने लगी। एक उन्मत्तताका अनुभव होने लगा। निर्भय होकर बोला—सम्भव है जिसे आपने निर्दय समझ रखा हो वह भी आपको ऐसा ही समझता हो और भयसे मुँह खोलनेका साहस न कर सकता हो।

सुन्दरीने कहा—तो कोई ऐसा उपाय बताइये जिससे दोनों ओरकी आग बुझे। प्रियतम! अब मै अपने हृदयकी दहकती हुई विरहाग्निको नही छिपा सकती। मेरा सर्वस्व आपको भेंट है। मेरे पास वह खजाने हैं जो कभी खाली न होंगे, मेरे पास वह साधन हैं जो आपको कीर्तिसे शिखरपर पहुँचा देगे। मै समस्त ससारको आपके पैरोंपर झुका सकती हूँ। बडे बडे सम्राट भी मेरी आज्ञाको नहीं टाल सकते। मेरे पास वह मन्त्र है जिससे मैं मनुष्यके मनोवेगोंको क्षणमात्रमें पलट सकती हूँ। आइये मेरे हृदयसे लिपट कर इस दाह क्रान्तिको शान्त कीजिये।

रमणीके चेहरेपर जलती हुई आगकी-सी कान्ति थी। वह दोनों हाथ फैलाये कामोन्मत्त होकर मेरी ओर बढी। उसकी आँखोंसे आगकी चिनगारियाँ निकल रही थीं। परन्तु जिस प्रकार अग्निसे पारा दूर भागता है उसी प्रकार मैं भी उसके सामनेसे एक कदम पीछे हट गया। उसकी इस प्रेमातुरतासे मैं भयभीत हो गया, जैसे कोई निर्धन मनुष्य किसीके हाथोंसे सोनेकी ईंट लेते हुए भयभीत हो जाय। मेरा चित्त एक अज्ञात आशंकासे काँप उठा। रमणीने मेरी ओर अग्निमय नेत्रोंसे देखा मानों किसी सिहनीके मुँहसे उसका आहार छिन जाय और सरोष होकर बोली—यह भीरुता क्यो?

मै—मैं आपका एक तुच्छ सेवक हूँ, इस महान आदरका पात्र नहीं।

रमणी—आप मुझसे घृणा करते हैं।

मैं—यह आपका मेरे साथ अन्याय है। मै इस योग्य भी तो नही कि आपके तलुओंको आँखोंसे लगाऊँ। आप दीपक हैं, मैं पतंग हूँ, मेरे लिए इतना ही बहुत है।

रमणी नैराश्यपूर्ण क्रोधके साथ बैठ गयी और बोली—वास्तवमे आप निर्दयी हैं, मै ऐसा न समझती थी। आपमे अभीतक अपनी शिक्षाके कुसस्कार लिपटे हुए हैं, पुस्तको और सदाचारकी बेड़ी आपके पैरोंसे नही निकली।

मैं शीघ्र ही अपने कमरेमे चला आया और चित्तके स्थिर होनेपर जब मै इस घटनापर विचार करने लगा तो मुझे ऐसा मालूम हुआ कि अग्नि कुडमें गिरते-गिरते बचा। कोई गुप्त शक्ति मेरी सहायक हो गयी। यह गुप्त शक्ति क्या थी?

[५]

मैं जिस कमरेमे ठहरा हुआ था उसके सामने झीलके दूसरी तरफ एक छोटा-सा झोंपडा था। उसमे एक वृद्ध पुरुष रहा करते थे। उनकी कमर तो झुक गयी थी पर चेहरा तेजमय था। वह कभी कभी इस महलमें आया करते थे। रमणी न जाने क्यों उनसे घृणा करती थी, मनमें उनसे डरती थी। उन्हे देखतेही घबरा जाती, मानो किसी असमञ्जसमे पडी हुई है। उसका मुख फीका पड़ जाता, जाकर अपने किसी गुप्त स्थानमे मुँह छिपा लेती, मुझे उसकी यह दशा देखकर कौतूहल होता था। कई बार उसने मुझसे भी उनकी चर्चा की थी, पर अत्यन्त अपमानके भावसे,

वह मुझे उनसे दूर-दूर रहनेका उपदेश दिया करती और यदि कभी मुझे उनसे बातें करते देख लेती तो उसके माथेपर बल पड़ जाते थे। कई दिनोंतक मुझसे खुलकर न बोलती थी।

उस रातको मुझे देरतक नींद नहीं आयी। उधेड़बुनमे पड़ा हुआ था। कभी जी चाहता आओ ऑख बन्द करके प्रेमरसका पान करें, ससारके पदार्थोंका सुख भोगे, जो कुछ होगा देखा जायगा। जीवनमे ऐसे दिव्य अवसर कहाँ मिलते हैं। फिर आप ही-आप मन कुछ खिच जाता था, घृणा उत्पन्न हो जाती थी।

रातके दस बजे होंगे कि हठात् मेरे कमरेका द्वार आप ही आप खुल गया और वही तेजस्वी पुरुष अन्दर आये। यद्यपि मै अपनी स्वामिनीके भयसे उनसे बहुत कम मिलता था पर उनके मुखपर ऐसी शान्ति थी और उनके भाव ऐसे पवित्र तथा कोमल थे कि हृदयमे उनके सतसङ्गकी उत्कठा होती थी। मैने उनका स्वागत किया और लाकर एक कुरसीपर बैठा दिया। उन्होंने मेरी ओर दयापूर्ण भावसे देखकर कहा—मेरे आनेसे तुम्हे कष्ट तो नहीं हुआ ?

मैने सिर झुकाकर उत्तर दिया—आप जैसे महात्माओंका दर्शन मेरे सौभाग्यकी बात है।

महात्माजी निश्चिन्त होकर बोले—अच्छा, तो सुनो और सचेत हो जाओ, मै तुम्हे यही चेतावनी देनेके लिये आया हूँ। तुम्हारे ऊपर एक घोर विपत्ति आनेवाली है। तुम्हारे लिये इस समय इसके सिवाय और कोई उपाय नही है कि यहासे चले जाओ, यदि मेरी बात न मानोगे तो जीवन पर्य्यन्त कष्ट झेलोगे और इस माया जालसे कभी मुक्त न हो

सकोगे। मेरा झोपड़ा तुम्हारे सामने था, मैं भी कभी कभी यहाँ आया करता था पर तुमने मुझसे मिलनेकी आवश्यकता न समझी। यदि पहले ही दिन तुम मुझसे मिलते तो सहस्रों मनुष्योंका सर्वनाश करनेके अपराधसे बच जाते। निसन्देह तुम्हारे कर्मोंका फल था जिसने आज तुम्हारी रक्षा की। अगर यह पिशाचिनी एक बार तुमसे प्रेमालिंगन कर लेती तो फिर तुम कहींके न रहते। तुम उसी दम उसके अजायब खानेमें भेज दिये जाते। वह जिसपर रीझती है उसकी यही गत बनाती है। यही उसका प्रेम है। चलो जरा इस अजायब खानेकी सैर करो तब तुम समझोगे कि आज तुम किस आफत से बचे।

यह कहकर महात्माजीने दीवारमें एक बटन दबाया। तुरन्त एक दरवाजा निकल आया। यह नीचे उतरनेकी सीढ़ी थी। महात्मा उसमें घुसे और मुझे भी बुलाया। घोर अन्धकारमें कई कदम उतरनेके बाद एक बड़ा कमरा नजर आया। उसमें एक दीपक टिमटिमा रहा था। वहाँ मैंने जो घोर वीभत्स और हृदय विदारक दृश्य देखे उसका स्मरण करके आज भी रोंगटे खड़े हो जाते हैं। इटैलीके अमरकवि 'डैन्टी' ने नर्कका जो दृश्य दिखाया है उससे कहीं भयावह, रोमाञ्चकारी तथा नारकीय दृश्य मेरी आँखोंके सामने उपस्थित था, सैकड़ों विचित्र देहधारी नाना प्रकारकी अशुद्धताओंमे लिपटे हुए, भूमिपर पड़े कराह रहे थे। उनके शरीर मनुष्योंके से थे, लेकिन चेहरोंका रूपान्तर हो गया था। कोई कुत्ते से मिलता था, कोई गीदड़से, कोई बन बिलावसे, कोई साँपसे। एक स्थानपर एक मोटा स्थूल मनुष्य,

एक दुर्बल, शक्तिहीन मनुष्यके गलेमें मुँह लगाये उसका रक्त चूस रहा था। एक ओर दो गिद्धकी सूरतवाले मनुष्य एक सड़ी हुई लाशपर बैठे उसका मांस नोच रहे थे। एक जगह एक अजगरकी सूरतका मनुष्य एक बालकको निगलना चाहता था, पर बालक उसके गलेमें अटका हुआ था। दोनों ही जमीनपर पड़े छटपटा रहे थे। एक जगह मैंने एक अत्यन्त पैशाचिक घटना देखी। दो नागिनकी सूरतवाली स्त्रियाँ एक भेड़ियेकी सूरतवाले मनुष्यके गलेमें लिपटी हुई उसे काट रही थीं। वह मनुष्य घोर वेदनासे चिल्ला रहा था। मुझसे अब और न देखा गया। तुरन्त वहाँसे भागा और गिरता पड़ता अपने कमरेमे आकर दम लिया। महात्माजी भी मेरे साथ चले आये। जब मेरा चित्त शान्त हुआ तो उन्होंने कहा—तुम इतनी जल्दी घबरा गये, अभी तो इस रहस्यका एक भाग भी नहीं देखा। यह तुम्हारी स्वामिनीके विहारका स्थान है और यही उनके पालतू जीव हैं। इन जीवोंके पिशाचाभिनय देखनेमें उनका विशेष मनोरञ्जन होता है। यह सभी मनुष्य किसी समय तुम्हारे ही समान प्रेम और प्रमोदके पात्र थे, पर आज उनकी यह दुर्गति हो रही है। अब तुम्हें मै यही सलाह देता हूँ कि इसी दम यहाँसे भागो नहीं तो रमणीके दूसरे वारसे कदापि न बचोगे।

यह कहकर वह महात्मा अदृश्य हो गये। मैने भी अपनी गठरी बाँधी और अर्ध रात्रिके सन्नाटेमे चोरोंकी भाति कमरेसे बाहर निकला। शीतल आनन्दमय समीर चल रही थी, सामनेके सागरमें तारे छिटक रहे थे, मेंहदीकी सुगन्धि उड़ रही थी। मैं चलनेको तो चला पर संसार सुख भोगका ऐसा सुअवसर छोड़ते

हुए दुःख होता था। इतना देखने और महात्माके उपदेश सुननेपर भी चित्त उस रमणीकी ओर खिचता था। मैं कई बार चला, कई बार लौटा, पर अन्तमें आत्माने इन्द्रियोंपर विजय पायी। मैंने सीधा मार्ग छोड़ दिया और झीलके किनारे-किनारे गिरता पड़ता कीचड़में फँसता हुआ सड़कतक आ पहुँचा। यहाँ आकर मुझे एक विचित्र उल्लास हुआ मानों कोई चिड़िया बाजके चगुलसे छूट गयी हो।

यद्यपि मै एक मासके बाद लौटा था पर अब जो देखा तो अपनी चारपाई पर पडा हुआ था। कमरेमे जरा भी गर्द या धूल न थी। मैंने लोगोंसे इस घटनाकी चर्चा की तो लोग खूब हँसे और मित्रगण तो अभीतक मुझे 'प्राइवेट सेक्रेटरी' कहकर बनाया करते हैं। सभी कहते हैं कि मै एक मिनटके लिए भी कमरेसे बाहर न निकला, महीने भर गायब रहनेकी तो बात ही क्या। इसलिए अब मुझे भी विवश होकर यही कहना पड़ता है कि शायद मैंने कोई स्वप्न देखा है। कुछ भी हो, परमात्माको कोटि धन्यवाद देता हूँ कि मै उस पापकुंडसे बचकर निकल आया। वह चाहे स्वप्न ही हो पर मै उसे अपने जीवनका एक वास्तविक अनुभव समझता हूँ क्योंकि उसने सदैवके लिए मेरी आँखें खोल दी।

महातीर्थ—

[१]

मुन्शी इन्द्रमणिकी आमदनी कम थी और खर्च ज्यादा। अपने बच्चेके लिए दाई रखनेका खर्च न उठा सकते थे। लेकिन एक तो बच्चेकी सेवा शुश्रूषाकी फिक्र और दूसरे अपने बराबर-वालोंसे हेठे बनकर रहनेका अपमान; इस खर्चको सहनेपर मजबूर करता था। बच्चा दाईको बहुत चाहता था, हरदम उसके गलेका हार बना रहता था। इसलिए दाई और भी जरूरी मालूम होती थी, पर शायद सबसे बडा कारण यह था कि वह मुरौवतके वश दाईको जवाब देनेका साहस नही कर सकते थे। बुढिया उनके यहाँ तीन सालसे नौकर थी। उसने उनके एकलौते लड़के-का लालन पालन किया था। अपना काम बडी मुस्तैदी और परिश्रमसे करती थी। उसे निकालनेका कोई बहाना नही था और व्यर्थ खुचड़ निकालना इन्द्रमणि जैसे भले आदमी के स्वभावके विरुद्ध था, पर सुखदा इस सम्बन्धमे अपने पतिसे सहमत न थी। उसे सन्देह था कि दाई हमें लूटे लेती है। जब दाई बाजारसे लौटती तो वह दालानमें छिपी रहती कि देखूँ आटा कही छिपाकर तो नही रख देती, लकड़ी तो नही छिपा देती। उसकी लाई हुई चीजोंको घटों देखती, पूछताछ करती। बार बार पूछती, इतना ही क्यों? क्या भाव है? क्या इतना मँहगा हो गया? दाई कभी तो इन सन्देहात्मक प्रश्नोंका उत्तर नम्रतापूर्वक देती किन्तु जब कभी बहूजी ज्यादा तेज हो जाती तो

वह भी कड़ा पड जाती थी। शपथें खाती। सफाईकी शहादतें पेश करती। वादविवादमें घण्टों लग जाते थे। प्रायः नित्य यही दशा रहती थी और प्रतिदिन यह नाटक दाईके अश्रुपातके साथ समाप्त होता था। दाईका इतनी सख्तियाँ झेलकर पडे रहना सुखदाके सन्देहको और भी पुष्ट करता था। उसे कभी विश्वास नही होता था कि यह बुढिया केवल बच्चेके प्रेमवश पड़ी हुई है। वह बुढियाको इतनी बाल प्रेम शीला नही समझती थी।

[२]

संयोगसे एक दिन दाईको बाजारसे लौटने में जरा देर हो गयी। वहाँ दो कुंजड़िनोमें देवासुर सङ्ग्राम मचा था। उनका चित्रमय हाव भाव, उनका आग्नेय तर्क-वितर्क, उनके कटाक्ष और व्यङ्ग सब अनुपम थे। विषके दो नद थे या ज्वालाके दो पर्वत, जो दोनों तरफसे उमड़कर आपसमें टकरा गये थे! क्या वाक्य प्रवाह था, कैसी विचित्र विवेचना! उनका शब्द बाहुल्य, उनकी मार्मिक विचारशीलता, उनके अलङ्कृत शब्द विन्यास और उनकी उपमाओंकी नवीनतापर ऐसा कौन सा कवि है जो मुग्ध न हो जाता। उनका धैर्य, उनकी शान्ति विस्मयजनक थी। दर्शकोंकी एक खासी भीड थी। वह लाजको भी लज्जित करनेवाले इशारे, वह अश्लील शब्द जिनसे मलिनताके भी कान खड़े होते, सहस्रों रसिकजनोंके लिए मनोरंजनकी सामग्री बने हुए थे।

दाई भी खड़ी हो गयी कि देखूँ क्या मामला है। तमाशा इतना मनोरञ्जक था कि उसे समयका बिलकुल ध्यान न रहा।-

यकायक जब नौके घंटेकी आवाज कानमें आयी तो चौक पड़ी और लपकी हुई घरकी ओर चली।

सुखदा भरी बैठी थी। दाईको देखते ही त्यौरी बदलकर बोली—क्या बाजारमें खो गयी थी।

दाई विनयपूर्ण भावसे बोली—एक जान पहचानकी महरीसे भेंट हो गयी। वह बातें करने लगी।

सुखदा इस जवाबसे और भी चिढ़कर बोली—यहाँ दफ्तर जानेको देर हो रही है और तुम्हे सैर सपाटेकी सूझती है।

परन्तु दाईने इस समय दबने हीमें कुशल समझी, बच्चेको गोदमे लेने चली, पर सुखदाने झिड़ककर कहा—रहने दो, तुम्हारे बिना वह व्याकुल नही हुआ जाता।

दाईने इस आज्ञाको मानना आवश्यक नही समझा। बहूजी का क्रोध ठण्ढा करनेके लिये इससे उपयोगी और कोई उपाय न सूझा। उसने रुद्रमणिको इशारेसे अपने पास बुलाया। वह दोनों हाथ फैलाये लड़खड़ाता हुआ उसकी ओर चला। दाईने उसे गोदमें उठा लिया और दरवाजेकी तरफ चली। लेकिन सुखदा बाजकी तरह झपटी और रुद्रको उसकी गोदसे छीनकर बोली—तुम्हारी यह धूर्तता बहुत दिनोंसे देख रही हूँ। यह तमाशे किसी औरको दिखाइयो। यहाँ जी भर गया।

दाई रुद्रपर जान देती थी और समझती थी कि सुखदा इस बातको जानती है। उसकी समझमे सुखदा और उसके बीच यह ऐसा मजबूत सम्बन्ध था जिसे साधारण झटके तोड़ न सकते थे। यही कारण था कि सुखदाके कटुवचनोंको सुनकर भी उसे यह विश्वास न होता था कि मुझे निकालनेपर प्रस्तुत है। पर

सुखदाने यह बातें कुछ ऐसी कठोरतासे कही और रुद्रको ऐसी निर्दयतासे छीन लिया कि दाईसे सह्य न हो सका। बोली—बहूजी! मुझसे कोई बड़ा अपराध तो नहीं हुआ, बहुत तो पाव घण्टेकी देर हुई होगी। इसपर आप इतना बिगड़ रही हैं, तो साफ क्यों नहीं कह देती कि दूसरा दरवाजा देखो। नारायण ने पैदा किया है तो खानेको भी देगा। मजदूरीका अकाल थोड़े ही है।

सुखदाने कहा—तो यहाँ तुम्हारी परवाह ही कौन करता है। तुम्हारी जैसी लौंड़िनें गली-गली ठोकरें खाती फिरती हैं।

दाईने जवाब दिया—हाँ नारायण आपको कुशलसे रखे। लौंड़िने और दाइयाँ आपको बहुत मिलेंगी। मुझसे जो कुछ अपराध हो क्षमा कीजियेगा। मैं जाती हूँ।

सुखदा—जाकर मरदानेमें अपना हिसाब कर लो।

दाई—मेरी तरफसे रुद्र बाबूको मिठाइयाँ मँगवा दीजियेगा।

इतनेमें इन्द्रमणि भी बाहरसे आ गये, पूछा—क्या है क्या?

दाईने कहा—कुछ नहीं। बहूजीने जवाब दे दिया है, घर जाती हूँ।

इन्द्रमणि गृहस्थीके जजालसे इस तरह बचते थे जैसे कोई नङ्गे पैरवाला मनुष्य काँटोंसे बचे। उन्हें सारे दिन एक ही जगह खड़े रहना मजूर था, पर काँटोंमे पैर रखनेकी हिम्मत न थी। खिन्न होकर बोले—बात क्या हुई?

सुखदाने कहा—कुछ नहीं। अपनी इच्छा। जी नहीं चाहता, नहीं रखते। किसीके हाथों बिक तो नहीं गये।

इन्द्रमणिने झुँझलाकर कहा—तुम्हें बैठे बैठाये एक-न एक खुचड़ सूझनी ही रहती है।

सुखदाने तिनककर कहा—हाँ, मुझे तो इसका रोग है। क्या करूँ, स्वभाव ही ऐसा है। तुम्हें यह बहुत प्यारी है तो ले जाकर गलेमें बाँध लो, मेरे यहाँ जरूरत नहीं है।

[३]

दाई घरसे निकली तो आँखे डबडबाई हुई थी। हृदय रुद्र-मणिके लिये तड़प रहा था। जी चाहता था कि एक बार बालकको लेकर प्यार कर लूँ। पर यह अभिलाषा लिये हुए ही उसे घरसे बाहर निकलना पड़ा।

रुद्रमणि दाईके पीछे-पीछे दरवाजेतक आया, पर दाईने जब दरवाजा बाहरसे बन्द कर दिया तो वह मचलकर जमीनपर लोट गया और अन्ना अन्ना कहकर रोने लगा। सुखदाने चुम-कारा, प्यार किया, गोदमें लेनेकी कोशिश की, मिठाई देनेका लालच दिया, मेला दिखानेका वादा किया, इससे जब काम न चला तो बन्दर, सिपाही, लूलू और हौआकी धमकी दी। पर रुद्रने वह रौद्र भाव धारण किया, कि किसी तरह चुप न हुआ। यहाँतक कि सुखदाको क्रोध आ गया, बच्चेको वहीं छोड़ दिया और आकर घरके धन्धेमें लग गयी। रोते-रोते रुद्रका मुँह और गाल लाल हो गये, आँखें सूज गयी। निदान वह वहीं जमीनपर सिसकते सिसकते सो गया।

सुखदाने समझा था कि बच्चा थोड़ी देरमें रो-धोकर चुप हो जायगा। पर रुद्रने जागते ही अन्नाकी रट लगायी। तीन बजे

इन्द्रमणि दफ्तरसे आये और बच्चेकी यह दशा देखी तो स्त्रीकी तरफ कुपित नेत्रोंसे देखकर उसे गोदमे उठा लिया और बहलाने लगे। जब अन्तमे रुद्रको यह विश्वास हो गया कि दाई मिठाई लेने गयी है तो उसे सन्तोष हुआ।

परन्तु शाम होते ही उसने फिर झीखना शुरू किया—अन्ना! मिठाई ला।

इस तरह दो-तीन दिन बीत गये। रुद्रको अन्नाकी रट लगाने और रोनेके सिवा और कोई काम न था। वह शान्तप्रकृति कुत्ता जो उसकी गोदसे एक क्षणके लिए भी न उतरता था, वह मौनव्रतधारी बिल्ली जिसे ताखपर देखकर वह खुशीसे फूला न समाता था, वह पङ्खहीन चिडिया जिसपर वह जान देता था, सब उसके चित्तसे उतर गये। वह उनकी तरफ आँख उठाकर भी न देखता। अन्ना जैसी जीती जागती, प्यार करनेवाली, गोदमें लेकर घुमानेवाली, थपक-थपककर सुलानेवाली, गा-गाकर खुश करनेवाली चीजका स्थान उन निर्जीव चीजोंसे पूरा न हो सकता था। वह अकसर सोते सोते चौंक पड़ता और अन्ना-अन्ना पुकारकर हाथोंसे इशारा करता, मानों उसे बुला रहा है। अन्ना की खाली कोठरीमे घटों बैठा रहता। उसे आशा होती कि अन्ना यहाँ आती होगी। इस कोठरीका दरवाजा खुलते सुनता तो अन्ना! अन्ना! कहकर दौड़ता। समझता कि अन्ना आ गयी। उसका भरा हुआ शरीर घुल गया गुलाब जैसा चेहरा सूख गया, माँ और बाप उसकी मोहनी हँसीके लिये तरस कर रह जाते थे। यदि बहुत गुदगुदाने या छेड़नेसे हँसता भी तो ऐसा जान पड़ता था कि दिलसे नहीं हँसता, केवल दिल रखनेके लिये हँस

रहा है। उसे अब दूधसे प्रेम नहीं था न मिश्रीसे, न मेवेसे, न मीठे बिस्कुटसे, न ताजी इमरतीसे। उनमें मजा तब था जब अन्ना अपने हाथोंसे खिलाती थी। अब उनमें मजा नहीं था। दो सालका लहलहाता हुआ सुन्दर पौधा मुर्झा गया। वह बालक जिसे गोदमें उठाते ही नरमी, गरमी और भारीपनका अनुभव होता था, अब सूखकर काँटा हो गया था। सुखदा अपने बच्चेकी यह दशा देखकर भीतर-ही भीतर कुढ़ती और अपनी मूर्खतापर पछताती। इन्द्रमणि जो शान्तिप्रिय आदमी थे अब बालकको गोदसे अलग न करते थे, उसे रोज साथ हवा खिलाने ले जाते थे, नित्य नये खिलौने लाते थे, पर वह मुर्झाया हुआ पौधा किसी तरह भी न पनपता था। दाई उसके लिये संसारका सूर्य थी। उस स्वाभाविक गर्मी और प्रकाशसे वञ्चित रहकर हरियालीकी बहार कैसे दिखाता ? दाईके बिना उसे अब चारो ओर अन्धेरा और सन्नाटा दिखाई देता था। दूसरी अन्ना तीसरे ही दिन रख ली गयी थी। पर रुद्र उसकी सूरत देखते ही मुँह छिपा लेता था मानो वह कोई डाइन या चुडैल है।

प्रत्यक्ष रूपमें दाईको न देखकर रुद्र अब उसकी कल्पनामें मग्न रहता। वहाँ उसकी अन्ना चलती-फिरती दिखाई देती थी। उसके वही गोद थी, वही स्नेह, वही प्यारी-प्यारी बातें, वही प्यारे गाने, वही मजेदार मिठाइयाँ, वही सुहावना संसार, वही आनन्दमय जीवन। अकेले बैठकर कल्पित अन्नासे बातें करता, अन्ना, कुत्ता भूके। अन्ना, गाय दूध देती। अन्ना, उजला-उजला घोड़ा दौड़े। सवेरा होते ही लोटा लेकर दाईकी कोठरीमें जाता और कहता—अन्ना, पानी। दूधका गिलास लेकर उसकी

कोठरीमें रख आता और कहता—अन्ना दूध पिला। अपनी चारपाईपर तकिया रखकर चादरसे ढाँक देता और कहता—अन्ना, सोती है। सुखदा जब खाने बैठती तो कटोरे उठा उठाकर अन्नाकी कोठरीमे ले जाता और कहता—अन्ना खाना खायगी। अन्ना अब उसके लिये एक स्वर्गकी वस्तु थी जिसके लौटनेकी अब उसे बिलकुल आशा न थी। रुद्रके स्वभावमे धीरे-धीरे बालकोंकी चपलता और सजीवताकी जगह एक निराशाजनक धैर्य, एक आनन्द-विहीन शिथिलता दिखाई देने लगी। इस तरह तीन हफ्ते गुजर गये। बरसातका मौसिम था। कभी बेचैन करनेवाली गर्मी, कभी हवाके ठंडे झोंके। बुखार और जोकामका जोर था। रुद्रकी दुर्बलता इस ऋतु परिवर्तनको बर्दाश्त न कर सकी। सुखदा उसे फलालैनका कुर्ता पहनाये रखती थी। उसे पानीके पास नही जाने देती। नगे पैर एक कदम भी नहीं चलने देती। पर सर्दी लग ही गयी। रुद्रको खाँसी और बुखार आने लगा।

[४]

प्रभातका समय था। रुद्र चारपाईपर आँख बन्द किये पड़ा था। डाक्टरोंका इलाज निष्फल हुआ। सुखदा चारपाईपर बैठी उसकी छातीमें तेलकी मालिश कर रही थी और इन्द्रमणि विषादकी मूर्त्ति बने हुए करुणापूर्ण आँखोंसे बच्चेको देख रहे थे। इधर सुखदासे बहुत कम बोलते थे। उन्हें उससे एक तरहकी घृणा-सी हो गयी थी। वह रुद्रकी बीमारीका एकमात्र कारण उसीको समझते थे। वह उनकी दृष्टिमें बहुत नीच स्वभावकी

स्त्री थी। सुखदाने डरते-डरते कहा—आज बड़े हकीम साहबको बुला लेते, शायद उनकी दवासे फायदा हो।

इन्द्रमणिने काली घटाओंकी ओर देखकर रुखाईसे जवाब दिया—बड़े हकीम नही यदि धन्वन्तरि भी आवें तो भी उसे कोई फायदा न होगा।

सुखदाने कहा—तो क्या अब किसीकी दवा न होगी?

इन्द्रमणि—बस; इसकी एक ही दवा है और अलभ्य है।

सुखदा—तुम्हे तो बस वही धुन सवार है। क्या बुढ़िया आकर अमृत पिला देगी?

इन्द्रमणि—वह तुम्हारे लिये चाहे विष हो पर लड़केके लिये अमृत ही होगी।

सुखदा—मै नहीं समझती कि ईश्वरेच्छा उसके अधीन है।

इन्द्रमणि—यदि नहीं समझती हो और अबतक नही समझी तो रोओगी। बच्चेसे हाथ धोना पड़ेगा।

सुखदा—चुप भी रहो; क्या अशुभ मुँहसे निकालते हो। यदि ऐसी ही जली कटी सुनाना है तो बाहर चले जाओ।

इन्द्रमणि—तो मैं जाता हूँ। पर याद रखो, यह हत्या तुम्हारी ही गर्दनपर होगी। यदि लड़केको तन्दुरुस्त देखना चाहती हो तो उसी दाईके पास जाओ, उससे विनती और प्रार्थना करो, क्षमा माँगो। तुम्हारे बच्चेकी जान उसीकी दयाके अधीन है।

सुखदाने कुछ उत्तर नही दिया। उसकी आँखोंसे आँसू जारी थे।

इन्द्रमणिने पूछा—क्या मर्जी है, जाऊँ उसे बुला लाऊँ।

सुखदा—तुम क्यो जाओगे, मै आप चली जाऊँगी।

इन्द्रमणि—नही, क्षमा करो। मुझे तुम्हारे ऊपर विश्वास नहीं है। न जाने तुम्हारी जबानसे क्या निकल पड़े कि जो वह आती भी हो तो न आवे।

सुखदाने पतिकी ओर फिर तिरस्कारकी दृष्टिसे देखा और बोली—हाँ और क्या; मुझे अपने बच्चेकी बीमारीका शोक थोड़े ही है। मैने लाजके मारे तुमसे कहा नही, पर मेरे हृदयमे यह बात बार बार उठी है। यदि मुझे दाईके मकानका पता मालूम होता तो मै कब ही उसे मना लायी होती। वह मुझसे कितनी ही नाराज हो पर रुद्रसे उसे प्रेम था। मैं आज ही उसके पास जाऊँगी। तुम विनती करनेको कहते हो मैं उसके पैरों पड़नेके लिये तैयार हूँ। उसके पैरोको आँसुओंसे भिगोऊँगी और जिस तरह राजी होगी राजी करूँगी।

सुखदाने बहुत धैर्य धरकर यह बातें कहीं परन्तु उमड़े हुए आँसू अब न रुक सके। इन्द्रमणिने स्त्रीकी ओर सहानुभूतिपूर्वक देखा और लज्जित हो बोले—मैं तुम्हारा जाना उचित नही समझता। मैं खुद ही जाता हूँ।

[५]

कैलासी संसारमे अकेली थी। किसी समय उसका परिवार गुलाबकी तरह फूला हुआ था। परन्तु धीरे-धीरे उसकी सब पत्तियाँ गिर गयीं। अब उसकी सब हरियाली नष्ट भ्रष्ट हो गयी और अब वही एक सूखी हुई टहनी उस हरे भरे पेड़का चिह्न रह गयी थी।

परन्तु रुद्रको पाकर इस सूखी हुई टहनीमें जान पड़ गयी थी। इसमें हरी भरी पत्तियाँ निकल आयी थीं। वह जीवन जो अबतक नीरस और शुष्क था अब सरस और सजीव हो गया था। अन्धेरे जङ्गलमें भटके हुए पथिकको प्रकाशकी झलक आने लगी थी। अब उसका जीवन निरर्थक नहीं बल्कि सार्थक हो गया था।

कैलासी रुद्रकी भोली भाली बातोंपर निछावर हो गयी। पर वह अपना स्नेह सुखदासे छिपाती थी। इसलिये कि माँके हृदयमें द्वेष न हो। वह रुद्रके लिये मासे छिपकर मिठाइयाँ लाती और उसे खिलाकर प्रसन्न होती। वह दिनमें दो तीन बार उसे उबटन मलती कि बच्चा खूब पुष्ट हो। वह दूसरोंके सामने उसे कोई चीज नहीं खिलाती कि उसे नजर लग जायगी। सदा वह दूसरोंसे बच्चेके अल्पाहारका रोना रोया करती। उसे बुरी नजरसे बचानेके लिये तावीज और गण्डे लाती रहती। यह उसका विशुद्ध प्रेम था। उसमे स्वार्थकी गन्ध भी न थी।

इस घरसे निकलकर आज कैलासीकी वह दशा थी जो थियेटरमें यकायक बिजली लैम्पोके बुझ जानेसे दर्शकोंकी होती है। उसके सामने वही सूरत नाच रही थी। कानोंमें वही प्यारी प्यारी बातें गूँज रही थी। उसे अपना घर काटे खाता था। उस काल कोठरीमें दम घुटा जाता था।

रात ज्यों त्यों कर कटी। सुबहको वह घरमें झाड़ू लगा रही थी। यकायक बाहर ताजे हलुवेकी आवाज सुनकर बड़ी फुर्तीसे घरसे बाहर निकल आयी। तबतक याद आ गया आज हलुवा कौन खायगा ? आज गोदमे बैठकर कौन चहकेगा ? वह

माधुरी गान सुननेके लिये जो हलुवा खाते समय रुद्रकी आँखोंसे, होठोंसे और शरीरके एक एक अङ्गसे बरसता था कैलासीका हृदय तडप गया। वह व्याकुल होकर घरसे बाहर निकली कि चलूँ रुद्रको देख आऊँ। पर आधे रास्तेसे लौट गयी।

रुद्र कैलासीके ध्यानसे एक क्षण भरके लिये भी नहीं उतरता था। वह सोते सोते चौक पड़ती, जान पड़ता रुद्र डंडेका घोड़ा दबाये चला आता है। पडोसिनोंके पास जाती तो रुद्र हीका चर्चा करती। रुद्र उसके दिल और जानमे बसा हुआ था। सुखदाके कठोरतापूर्ण कुव्यवहारका उसके हृदयमें ध्यान नहीं था। वह रोज इरादा करती थी कि आज रुद्रको देखने चलूँगी। उसके लिये बाजारसे मिठाइयाँ और खिलौने लाती! घरसे चलती पर रास्तेसे लौट आती। कभी दो चार कदमसे आगे नहीं बढा जाता। कौन मुँह लेकर जाऊँ? जो प्रेमको धूर्तता समझता हो, उसे कौन-सा मुँह दिखाऊँ? कभी सोचती यदि रुद्र मुझे न पहचाने तो? बच्चोंके प्रेमका ठिकाना ही क्या? नयी दाईसे हिल मिल गया होगा। यह खयाल उसके पैरोंपर जंजीर का काम कर जाता था।

इस तरह दो हप्ते बीत गये। कैलासीका जी उचटा रहता, जैसे उसे कोई लम्बी यात्रा करनी हो। घरकी चीजे जहाँकी तहाँ पड़ी रहती, न खानेकी सुधि थी न कपडे की। रात-दिन रुद्रहीके ध्यानमें डूबी रहती थी। सयोगसे इन्हीं दिनों बद्रीनाथकी यात्राका समय आ गया। महल्लेके कुछ लोग यात्राकी तैयारियाँ करने लगे। कैलासीकी दशा इस समय उस पालतू चिड़ियाकी-सी थी जो पिंजड़ेसे निकलकर फिर किसी कोनेकी खोजमें हो।

उसे विस्मृतिका यह अच्छा अवसर मिल गया। यात्राके लिये तैयार हो गयी।

[६]

आसमानपर काली घटाएँ छाई हुई थीं और हल्की-हल्की फुहारें पड़ रही थीं। देहली स्टेशनपर यात्रियोंकी भीड़ थी। कुछ गाड़ियोंपर बैठे थे, कुछ अपने घरवालोंसे बिदा हो रहे थे। चारो तरफ एक हलचल-सी मची थी। संसार-माया आज भी उन्हे जकड़े हुए थी। कोई स्त्रीको सावधान कर रहा था कि धान कट जावे तो तालाबवाले खेतमें मटर बो देना और बागके पास गेहूँ। कोई अपने जवान लड़केको समझा रहा था असामियोंपर बकाया लगानकी नालिश करनेमें देर न करना और दो रुपये सैकड़ा सूद जरूर काट लेना। एक बूढ़े व्यापारी महाशय अपने मुनीबसे कह रहे थे कि माल आनेमें देर हो तो खुद चले जाइयेगा और चलतू माल लीजियेगा, नही तो रुपया फँस जायगा। पर कोई-कोई ऐसे श्रद्धालु मनुष्य भी थे जो धर्म मग्न दिखाई देते थे। वे या तो चुपचाप आसमानकी ओर निहार रहे थे या माला फेरनेमें तल्लीन थे। कैलासी भी एक गाडीमें बैठी सोच रही थी, इन भले आदमियोंको अब भी संसारकी चिन्ता नहीं छोड़ती। वही बनिज व्यापार लेन-देनकी चर्चा। रुद्र इस समय यहाँ होता तो बहुत रोता, मेरी गोदसे कभी न उतरता। लौटकर उसे अवश्य देखने जाऊँगी। या ईश्वर किसी तरह गाड़ी चले, गर्मीके मारे, जी व्याकुल हो रहा है। इतनी घटा उमड़ी हुई है, किन्तु बरसनेका नाम नही लेती। मालूम नहीं यह

रेलवाले क्यो देर कर रहे हैं। झूठमूठ इधर-उधर दौड़ते-फिरते हैं। यह नहीं कि झटपट गाडी खोल दें। यात्रियोंकी जानमें जान आये। एकाएक उसने इन्द्रमणिको बाइसिकिल लिये प्लेटफार्मपर आते देखा। उनका चेहरा उतरा हुआ था और कपडे पसीनोंसे तर थे। वह गाड़ियोंमे झॉकने लगे। कैलासी केवल यह जतानेके लिये कि मै भी यात्रा करने जा रही हूॅ, गाड़ीसे बाहर निकल आयी। इन्द्रमणि उसे देखते ही लपककर करीब आ गये और बोले—क्यो कैलासी, तुम भी यात्राको चली ?

कैलासीने सगर्व दीनतासे उत्तर दिया--हॉ यहॉ क्या करूँ, जिन्दगीका कोई ठिकाना नही, मालूम नही कब ऑखे बन्द हो जायॅ। परमात्माके यहॉ मुँह दिखानेका भी तो कोई उपाय होना चाहिये। रुद्र बाबू अच्छी तरह हैं ?

इन्द्रमणि —अब तो जाही रही हो। रुद्रका हाल पूछकर क्या करोगी ? उसे आशीर्वाद देती रहना।

कैलासीकी छाती धडकने लगी। घबराकर बोली—उनका जी अच्छा नहीं है क्या ?

इन्द्रमणि—वह तो उसी दिनसे बीमार है जिस दिन तुम वहासे निकली। दो हफ्तेतक उसने अन्ना-अन्नाकी रट लगाई। अब एक हफ्तेसे खॉसी और बुखारमें पड़ा है सारी दवाइयाँ करके हार गया, कुछ फायदा नहीं हुआ। मैंने सोचा था कि चलकर तुम्हारी अनुनय-विनय करके लिवा लाऊॅगा। क्या जाने तुम्हे देखकर उसकी तबीयत सँभल जाय। पर तुम्हारे घरपर आया तो मालूम हुआ कि तुम यात्रा करने जा रही हो। अब किस मुँहसे चलनेको कहूॅ। तुम्हारे साथ सलूक ही कौन सा

अच्छा किया था जो इतना साहस करूँ। फिर पुण्य कार्य्यमें विघ्न डालनेका भी डर है। जाओ उसका ईश्वर मालिक है। आयु शेष है तो बच ही जायगा अन्यथा ईश्वरी गतिमें किसीका क्या वश।

कैलासीकी आँखोंके सामने अन्धेरा छा गया। सामनेकी चीजे तैरती हुई मालूम होने लगी। हृदय भावी अशुभकी आशङ्का से दहल गया। हृदयसे निकल पडा—'या ईश्वर, मेरे रुद्रका बाल बाँका न हो।' प्रेमसे गला भर आया। विचार किया कि मै कैसी कठोर हृदया हूँ। प्यारा बच्चा रो रोकर हलकान हो गया और मैं उसे देखनेतक नही गयी। सुखदाका स्वभाव अच्छा नहीं, न सही, किन्तु रुद्रने मेरा क्या बिगाड़ा था कि मैने माँका बदला बेटेसे लिया। ईश्वर मेरा अपराध क्षमा करो। प्यारा रुद्र मेरे लिये हुडक रहा है। (इस खयालसे कैलासीका कलेजा मसोस उठा था और आँखोंमें आँसू बह निकले) मुझे क्या मालूम था कि उसे मुझसे इतना प्रेम है। नही मालूम बच्चेकी क्या दशा है। भयातुर हो बोली—दूध तो पीते हैं न?

इन्द्रमणि—तुम दूध पीनेको कहती हो, उसने दो दिनसे आँखेंतक न खोलीं।

कैलासी—या मेरे परमात्मा! अरे कुली! कुली! बेटा, आकर मेरा सामान गाडीसे उतार दे। अब मुझे तीरथ जाना नही सूझता। हाँ बेटा, जल्दी कर, बाबूजी देखो कोई एका हो तो ठीक कर लो।

एका रवाना हुआ। सामने सड़कपर बग्घियाँ खड़ी थीं। घोड़ा धीरे-धीरे चल रहा था। कैलासी बार-बार झुँझलाती थी

और एकावानसे कहती थी, बेटा ! जल्दी कर। मैं तुझे कुछ ज्यादे दे दूँगी। रास्तेमें मुसाफिरोंकी भीड देखकर उसे क्रोध आता था। उसका जी चाहता था कि घोड़े के पर लग जाते लेकिन इन्द्रमणिका मकान करीब आ गया तो कैलासीका हृदय उछलने लगा। बार-बार हृदयसे रुद्रके लिये शुभ आशीर्वाद निकलने लगा। ईश्वर करे सब कुशल मङ्गल हो। एका इन्द्र· मणिकी गलीकी ओर मुड़ा। अकस्मात् कैलासीके कानमें रोनेकी ध्वनि पड़ी। कलेजा मुँहको आ गया। सिरमे चक्कर आ गया। मालूम हुआ नदीमें डूबी जाती हूँ। जी चाहा कि एक्केपरसे कूद पड़ूँ। पर थोड़ी ही देरमें मालूम हुआ कि कोई स्त्री मैकेसे विदा हो रही है। सन्तोष हुआ। अन्तमें इन्द्रमणिका मकान आ पहुँचा। कैलासीने डरते डरते दरवाजेकी तरफ ताका। जैसे कोई घरसे भागा हुआ अनाथ लड़का शामको भूखा प्यासा घर आये और दरवाजेकी ओर सटकी हुई आँखोंसे देखे कि कोई बैठा तो नही है! दरवाजेपर सन्नाटा छाया हुआ था। महाराज बैठा सुरती मल रहा था। कैलासीको जरा ढाढस हुआ। घरमें पैठी तो नई दाई पुलटिस पका रही है। हृदयमें बलका सञ्चार हुआ। सुखदाके कमरेमें गयी तो उसका हृदय गर्मीके मध्याह्नकालके सदृश काँप रहा था। सुखदा रुद्रको गोदमें लिये दरवाजेकी ओर एक टक ताक रही थी। शोक और करुणाकी मूर्ति बनी थी।

कैलासीने सुखदासे कुछ नही पूछा। रुद्रको उसकी गोदसे ले लिया और उसकी तरफ सजल नयनोसे देखकर कहा—बेटा, रुद्र, आँखे खोलो।

रुद्रने आँखें खोलीं, क्षणभर दाईको चुपचाप देखता रहा

तब यकायक दाईके गलेसे लिपटकर बोला—अन्ना आई! अन्ना आई!!

रुद्रका पीला मुर्झाया हुआ चेहरा खिल उठा, जैसे बुझते हुए दीपकमें तेल पड़ जाय। ऐसा मालूम हुआ मानों वह कुछ बढ़ गया है।

एक हफ्ता बीत गया। प्रातःकालका समय था। रुद्र आँगनमे खेल रहा था। इन्द्रमणिने बाहरसे आकर उसे गोदमें उठा लिया और प्यारसे बोले—तुम्हारी अन्नाको मारकर भगा दें?

रुद्रने मुँह बनाकर कहा—नहीं रोयेगी।

कैलाशी बोली—क्यों बेटा, तुमने तो मुझे बद्रीनाथ नहीं जाने दिया। मेरी यात्राका पुण्य-फल कौन देगा?

इन्द्रमणिने मुस्कुराकर कहा—तुम्हें उससे कहीं अधिक पुण्य हो गया। यह तीर्थ

महातीर्थ

है